डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी

एक संक्षिप्त जीवनी

संसार में ऐसे कम लोग हैं, जिन्होंने जीवन के केवल 52 साल के अंतिम 14 साल राजनीति में बिताए हों और इसी अल्पावधि में वे महानतम ऊंचाई को छूकर इतिहास में अमर हो गये हों। ऐसे ही थे डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी। उनका जन्म 6 जुलाई 1901 को कलकत्ता में हुआ था और उन्होंने अपनी अंतिम सांस संदिग्ध परिस्थितियों में 23 जून 1953 को श्रीनगर में ली, जहां उन्हें नजरबंद रखा गया था। डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी और उनके सबसे प्रिय सहयोगी पंडित दीनदयाल उपाध्याय, दोनों का जीवनकाल बहुत छोटा था। उन दोनों के निधन में भी दुःखद समानता थी। इन दोनों महापुरूषों की मृत्यु रहस्यमयी परिस्थितियों में हुई थी और मात्र 52 वर्ष की अल्प आयु में वे दोनों इस संसार को छोड़ गए थे।

'बांग्लार बाघ' अर्थात् बंगाल टाइगर के नाम से सुविख्यात महान शिक्षाविद् सर आशुतोष मुखर्जी (1864–1924) के दूसरे पुत्र डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने भी अपने जीवन का प्रारंभ एक शिक्षाविद् तथा एक वकील के रूप में किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी आशुतोष मुखर्जी ने अपने बड़े बेटे रामा प्रसाद का पालन पोषण ऐसे किया कि वे कानून के क्षेत्र में अपना नाम करे और दूसरा बेटा डॉ. श्यामा प्रसाद शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़े। कलकत्ता विश्वविद्यालय में शानदार शैक्षणिक रिकॉर्ड तथा स्नातक एवं स्नातकोत्तर परीक्षा में सर्वोच्च स्थान पाकर श्यामा प्रसाद ने कलकत्ता उच्च न्यायालय में 'इंडियन बार' के सदस्य बनने के लिए कानून का अध्ययन किया और इसके बाद बैरिस्टर बनने के लिए इंग्लैण्ड रवाना हो गये, जिससे कि वे 'इंग्लिश बार' में सदस्य बन सकें। लेकिन उनके इंग्लैण्ड जाने का मूल उद्देश्य ब्रिटेन में विश्वविद्यालयों की कार्यप्रणाली का अध्ययन करना था। उन्होंने यही किया और कलकत्ता विश्वविद्यालय के सिंडिकेट के केवल 23 साल की उम्र में वह इसके सबसे युवा सदस्य

थे। उस समय भारत में 'द्वैधशासन प्रणाली' के अन्तर्गत प्रशासन चलाया जा रहा था। इसमें शिक्षा 'स्थानांतरित विषयों' में से एक थी, जो मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट, 1919 द्वारा प्रारंभ की गई। यह ऊपरी दृष्टि से स्थानांतरित विषयों में एक थी, किन्तु इसमें भारतीयों के लिए अधिक कुछ नहीं था। इसी को देखते हुए श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कांग्रेस प्रत्याशी के रूप में विश्वविद्यालय चुनाव क्षेत्र से विधान परिषद् (1929) में प्रवेश किया। हालांकि इसके तुरंत बाद कांग्रेस ने परिषद् के बहिष्कार का फैसला किया। श्यामा प्रसाद इस निर्णय से सहमत नहीं हुए और विधान परिषद में एक स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में वापस आने के लिए अपनी सीट से त्यागपत्र दे दिया। अपने जीवन के उस दौर में वे राजनीति के बजाय शिक्षा को लेकर अधिक चिंतित थे।

उस युवावस्था में श्यामा प्रसाद ने विश्वविद्यालय से सम्बन्धित विषयों में अपने आपको इतने सुन्दर प्रकार से प्रस्तुत किया कि उस समय के महान् वैज्ञानिक प्रफुल्ल चंद्र रॉय ने उन्हें 'अपने पिता का पुत्र' कहते हुए बधाई दी। सिर्फ 33 साल की अविश्वसनीय उम्र में वे विश्वविद्यालय के उपकुलपति बन गये और विश्वविद्यालय संचालन में नए प्राण डाल दिए। 1934–1938 तक उन्होंने कुलपति के रूप में दो वर्ष के दो कार्यकाल पूरे किये। इस पद पर रहते हुए भारतीय दृष्टिकोण से भारतीय इतिहास में गंभीर शोध करने के इच्छुक राष्ट्रवादी विद्वानों को उन्होंने भरपूर सहयोग व समर्थन दिया। विश्वविद्यालय में खुदाई को प्रोत्साहन के साथ–साथ भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व से संबंधित पहले संग्रहालय की नींव रखी तथा भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा संस्कृत के अध्ययन के लिए अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों से वहां के छात्रों को भारत भेजने का अनुरोध किया। उन्होंने भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहित किया और 1937 में गुरुदेव रबिन्द्रनाथ टैगोर को दीक्षांत समारोह में छात्रों को बांग्ला में संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया। यह प्रथम अवसर था जब किसी दीक्षांत समारोह को बांग्ला में संबोधित किया गया।

इस बीच उनके जीवन में आयी व्यक्तिगत त्रासदी ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। उनकी बड़ी बहन कमला विधवा हो गईं, उनका पुनः विवाह हुआ किन्तु वे फिर विधवा हो गईं और अंततः उनकी मृत्यु हो गईं। उनके जीवन को आलोकित करने वाले पिता सर आशुतोष मुखर्जी भी समय से पहले, 1924 में केवल 60 वर्ष की आयु में दिवंगत हो गये। इसके बाद उनके जीवन की सबसे बड़ी विपदा उस समय आयी, जब उनका 11 साल तक साथ निभाने वाली प्रिय पत्नी सुधा भी साथ छोड़ गईं। श्यामा प्रसाद को अपने चार बच्चों की देखभाल करनी थी। ऐसी विषम परिस्थिति में भी वे अपने सार्वजनिक जीवन के दायित्वों का निर्वहन कर सके क्योंकि उनकी भाभी, जस्टिस रामा प्रसाद की पत्नी श्रीमती तारा देवी ने उनके बच्चों की देखभाल में अत्यंत सहयोग किया।

1935 में ब्रिटिश संसद ने गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट पारित किया, जिसके अंतर्गत भारतीयों को ज्यादा प्रतिनिधित्व मिलना था तथा हर प्रांत में एक चुनी हुई सरकार होनी थी, जिसे पूरी तरह भारतीयों द्वारा चलाया जाना था। लेकिन इसका क्रियान्वयन एक ब्रिटिश गवर्नर के कार्यकारी शासन के अंतर्गत भारतीय तथा अंग्रेज अधिकारियों द्वारा चलायी जा रही भारतीय सिविल सेवा के माध्यम से होना था। इस एक्ट के माध्यम से ब्रिटिश षड्यंत्र के कारण, भारत में साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण (पृथक निर्वाचन क्षेत्र) तथा प्रतिनिधित्व के कारण साम्प्रदायिकता बढ़ने लगी थी तथा मुहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सांम्प्रदायिक दल के रूप में मुस्लिम लीग उभर आयी थी। यद्यपि अब भी मुस्लिमों पर मुस्लिम लीग की पकड़ बहुत मजबूत नहीं थी। बंगाल में, मुस्लिम लीग अधिकांशतः जमींदारों तथा मुसलमानों की मामूली संख्या में मध्यवर्ग एवं मौलवियों का ही नेतृत्व कर रही थी। अधिकांश मुस्लिम किसान अबुल कासीम फजलुल हक के साथ थे। इसलिए ऐसे मुस्लिम नेतृत्व की तलाश होने लगी जो उनके हितों की रक्षा कर सके।

परिणामस्वरूप हिन्दू समुदाय के प्रमुख लोग, चिंतक स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि इस मंत्रिमंडल के अंतर्गत बंगाली हिन्दुओं के हित खतरे में थे, अतः सब लोगों की दृष्टि डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी पर पड़ी तथा उन्हें इस बात के लिए मनाया गया कि सरस्वती देवी का मंदिर छोड़कर वे राजनीति के उबड़–खाबड़ रास्ते में प्रवेश करें। इस तरह वे 'शैक्षिक पार्थक्य' से बाहर निकले और राजनीति में पूरी तरह सक्रिय हो गये। कुछ लोगों का यह मानना है, 'डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी उन बंगाली हिन्दुओं के दुर्भाग्य पर पसीजते हुए विश्वविद्यालय छोड़ने और राजनीति में आने को बाध्य हुए, जो 'राष्ट्रभक्ति के महान् पाप' के लिए, अंग्रेजों की सहायता से मुस्लिम लीग द्वारा योजनाबद्ध तरीके से अपमानित किए तथा लूटे जा रहे थे।'

राजनीति में डॉ. मुखर्जी की सक्रियता भी एक कठिन घड़ी में सामने आयी। कांग्रेस बंगाल में शक्तिशाली तो थी, लेकिन सदा की तरह हिन्दुओं के अधिकारों पर बोलने से हिचकती थी और मुस्लिम लीग के दबाव की राजनीति के सामने घुटने टेक रही थी। कम्युनिस्ट पार्टी एक अलग दल व शक्ति थी, जो, मुस्लिम लीग को समर्थन दे रही थी और उसने भी हिन्दुओं के समर्थन में बोलने वाली हिन्दू महासभा तथा अन्य संगठनों को 'साम्प्रदायिक तथा प्रतिक्रियावादी' कहना प्रारंभ कर दिया था। रोचक तथ्य यह है कि आज भी कम्युनिस्टों की प्रवृत्ति वैसी ही है। लगभग सात दशकों बाद भी उसके सोच में कोई बदलाव नहीं आया है। डॉ. मुखर्जी को राजनीति में लाने के लिए प्रेरित करने वालों में एन.सी.चटर्जी (पूर्व लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी के पिता), आशुतोष लाहिड़ी, जस्टिस मन्मथ नाथ मुखर्जी तथा भारत सेवाश्रम संघ के संस्थापक स्वामी प्रणवानन्द महाराज थे। डॉ. मुखर्जी के लिए प्रणवानंदजी महाराज महान् प्रेरणास्रोत रहे।

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के नेता विनायक दामोदर 'वीर'

सावरकर अगस्त–सितंबर 1939 में बंगाल आये। इस समय डॉ. मुखर्जी, फजलुल हक के नेतृत्व में चल रही 'कृषक प्रजा पार्टी' के समर्थक थे। यद्यपि अधिकतर किसानों के समर्थन के बावजूद, व्यक्तिगत रूप से हक सांप्रदायिक नहीं थे, तथा इसी आधार पर उनकी पार्टी की संस्कृति का विकास भी हुआ था। इस प्रकार, बंगाल में क्रमशः कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा कृषक प्रजा पार्टी जैसी तीन बड़ी राजनीतिक पार्टियां थीं।

चुनावों में किसी भी पार्टी को बहुमत नहीं मिला। ऐसी परिस्थिति में तर्कसंगत यही था कि कांग्रेस ज्यादातर मुसलमानों के समर्थन वाली तथा अपने चरित्र में अपेक्षाकृत पंथनिरपेक्ष कृषक प्रजा पार्टी के समर्थन से गठबंधन की सरकार बनाती। हालांकि कुछ अकथनीय कारणों से कांग्रेस हाईकमान ने इस गठबंधन के लिए प्रांत इकाई को अनुमति नहीं दी। यह एक ऐसी गलती थी, जिसका भारी मूल्य बंगाली हिन्दुओं को लंबे समय तक चुकाना पड़ा। यदि इस समय गठबंधन सरकार बना ली गई होती, तो पूरा बंगाल भारत का अभिन्न हिस्सा होता। कांग्रेस की इस जड़ता के परिणामस्वरूप, नलिनी रंजन सरकार नामक एक बंगाली हिन्दू उद्योगपति की मध्यस्थता से मुस्लिम लीग तथा कृषक प्रजा पार्टी ने गठबंधन की सरकार बना ली।

गठबंधन की सरकार बनने के बाद, मुस्लिम लीग धीरे–धीरे कृषक प्रजा पार्टी को निगल गई तथा प्रांत में कठोर कानूनों को लादना शुरू किया, जो मुसलमानों के हित में तथा हिन्दुओं के विरुद्ध थे। इस अवस्था में, शैक्षणिक तथा व्यावसायिक उपलब्धियों की दृष्टि से हिन्दू, मुसलमानों से कहीं आगे थे। शिक्षा मंत्रालय ने शिक्षा और अनुभव को एक ओर करते हुए पूरी कोशिश की कि हिन्दुओं को सरकारी नौकरी से पूरी तरह दूर रखा जाए। इसी बीच फजलुल हक मुस्लिम लीग में शामिल कर लिये गए तथा 1940 में मुस्लिम लीग के लाहौर सम्मेलन में मशहूर पाकिस्तान प्रस्ताव को आगे बढ़ाने के लिए

उन्हें राजी कर लिया गया।

इस बीच, बंगाल के हिन्दू भांति–भांति से सताये जाने लगे। डॉ. मुखर्जी उनके निकट संपर्क में आये और वे हिन्दू महासभा में शामिल हो गए। इसके साथ ही डॉ. मुखर्जी सक्रिय राजनीति में आ गये। राजनीति में उनके आगमन का गांधीजी ने स्वागत किया, जो उनके सतत् राष्ट्रवादी तौर तरीकों से बेहद प्रभावित थे तथा उन्होंने कहा, 'मालवीयजी (पंडित मदन मोहन मालवीय) के बाद हिन्दुओं का नेतृत्व करने के लिए किसी की जरूरत थी।' इसके जवाब में डॉ. मुखर्जी ने कहा, 'लेकिन आप तो मुझे सांप्रदायिक कहेंगे।' गांधी जी ने उत्तर में कहा, 'समुद्रमंथन के बाद जिस तरह शिव ने विषपान कर लिया था, ठीक उसी तरह भारतीय राजनीति के विष को पीने के लिए भी किसी को होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति आप ही हो सकते हैं।' वास्तव में बिना कुछ कहते हुए गांधी जी डॉ. मुखर्जी की योग्यता की प्रशंसा में बहुत कुछ कह गये। यह उन्हीं का आग्रह था कि नेहरू ने 1947 में स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्रिमंडल में डॉ. मुखर्जी को उद्योग तथा आपूर्ति मंत्री के रूप में शामिल किया। महासभा में आने के पहले वर्ष में ही डॉ. मुखर्जी ने पूरे बंगाल का व्यापक दौरा करते हुए हिन्दुओं से अपने मतभेद तथा भिन्नता भुलाने का आह्वान किया। उनकी ऊर्जा से भरपूर राजनीतिक नेतृत्व ने हिन्दू महासभा को पूरे बंगाल में जीवंत और एकजुट कर दिया। डॉ. मुखर्जी के राजनीति में आने के पहले साल के भीतर अपनी बीमारी को देखते हुए वीर सावरकर ने उन्हें अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का कार्यकारी अध्यक्ष नियुक्त कर दिया। ऐसा होते ही डॉ. मुखर्जी ने अपने संदेश को देशव्यापी दौरे के माध्यम से जन–जन तक पहुंचाना शुरू कर दिया और इस प्रक्रिया में, डॉ. मुखर्जी स्वयं ही राष्ट्रीय नेता बन गए। उन्हें देशभर में पहचान मिली। उनके साहस, उद्देश्य को लेकर उनकी प्रतिबद्धता, उनकी सांगठनिक क्षमता, वक्तव्य कला तथा लोगों तक पहुंच बनाने की उनकी अद्‌भुत क्षमता ने उन्हें जल्दी ही पूरे भारत में लोकप्रिय बना

दिया। अब वे संपूर्ण देश के हिन्दुओं के लिए एक आकर्षण के केन्द्र बन चुके थे। 1940 का साल था, जब लाहौर में उन्होंने 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की एक सभा' को संबोधित किया तथा उन्होंने कहा, 'मैं इस संगठन में भारत के आकाश में छाये बादल के बीच आशा की एक किरण देखता हूं'।

डॉ. मुखर्जी जब एक बार राजनीति में आ गये, तो उन्होंने बंगाल की मुस्लिम लीग सरकार के भयावह तौर तरीकों के विरुद्ध लड़ाई को आगे बढ़ाया। सरकार माध्यमिक शिक्षा को विश्वविद्यालय की छत्रछाया से बाहर निकालकर सीधे–सीधे सरकारी नियंत्रण और उसका इस्लामीकरण करने की कोशिश कर रही थी। क्योंकि बंगाल में माध्यमिक शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय की देखरेख में थी तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय को अपने नियंत्रण में लेना मुस्लिम लीग के लिए कठिन था, इसलिए लीग ने माध्यमिक शिक्षा को शैक्षिक क्षेत्राधिकार से बाहर लाकर उस संस्था को कमजोर करने का निर्णय लिया तथा इसे माध्यमिक शिक्षा बोर्ड को सौंप दिया, जिसमें लीग द्वारा नामांकित सदस्यों का बहुमत था। ये सब डॉ. मुखर्जी के लिए स्वीकार कर पाना संभव नहीं था और वे अब चुप नहीं रहने वाले थे। जब इस विधेयक को बंगाल विधानसभा में लाया गया, तब डॉ. मुखर्जी ने इसका भरपूर विरोध किया। उन्होंने सदन में बहस की मांग की। सदन के बाहर आंदोलन को संगठित किया तथा उस विधेयक के खिलाफ जनमत तैयार करने में जुट गये। उन्होंने इस विधेयक को लेकर तर्क दिया, 'यह विधेयक बंगाल में शैक्षिक प्रशासन को एक आक्रामक सांप्रदायिक मोड़ पर ला खड़ा कर देगा।' माध्यमिक शिक्षा विधेयक का विरोध करने के दौरान डॉ. मुखर्जी ने राजनीतिक लक्ष्य और उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए संवैधानिक उपायों का इस्तेमाल करते हुए गजब की क्षमता और दक्षता का प्रदर्शन किया। इसमें उनकी उत्कृष्टता और विशेषज्ञता इतनी अधिक थी कि वे अन्य दलों का भी दिल जीतने में सफल रहे। हिन्दू महासभा के नेता के रूप में

स्थापित डॉ. मुखर्जी ने इसके विरोध में कांग्रेस को भी समर्थन देने के लिए तैयार किया तथा विधान परिषद् में विरोध स्वरूप जोरदार आवाज उठाने में सफल रहे। इस माध्यमिक शिक्षा विधेयक का उनका सफल विरोध 'शुद्ध रूप से संवैधानिक उपायों वाला था, न कि किसी गली–चौराहों पर किया जाने वाला विरोध। एक बार फिर उनके व्यक्तित्व में संवैधानिक तथा संसदीय राजनीति की अद्भुत समझ व क्षमता दिखी।' मुस्लिम लीग के कार्य करने के अन्य तौर तरीके, विशेष रूप से पूर्वी बंगाल में दंगा भड़काने वाले थे। ढाका, नोआखली तथा नारायणगंज (अब सभी बांग्लादेश में) में हिन्दू के विरोध में भारी मार–काट व तबाही हुई। डॉ. मुखर्जी ब्रिटिश सरकार की कड़ी आपत्ति के बावजूद, दंगे को शांत करने के लिए ढाका जाना चाहते थे। ढाका जाने वाली प्लेन की एक सीट उनके अनुरोध पर खाली छोड़ दी गई ताकि उन पर किसी तरह का शक नहीं जाए। डॉ. मुखर्जी ने अपनी स्वयं की जिम्मेदारी पर खतरा मोल लेते हुए छोटे मोनो प्लेन से यात्रा की। वे अनाधिकृत रूप से ढाका पहुंचने वाले पहले बाहरी हिन्दू थे।' ढाका पहुंचने पर शहर में उनके प्रवेश पर रोक लगाने वाले किसी भी तरह के प्रयास को उन्होंने ललकारा तथा वे सीधे ढाका के नवाब के महल पहुंच गये और नवाब को इस बात के लिए राजी कर लिया कि नरसंहार रोकने के लिए वे उनका सहयोग करें। वे ढाका में प्रसिद्ध इतिहासकार आर.सी.मजूमदार के घर पर लगातार चार–पांच दिन रुके, जो उस समय ढाका विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे। उन्होंने प्रभावित लोगों के मनोबल बढ़ाने के लिए पीड़ित क्षेत्रों में निडरता के साथ प्रवास किया। इसी प्रकार अदम्य साहस तथा निडरता का प्रदर्शन डॉ. मुखर्जी के पूरे जीवन में देखने को मिलता रहा। वे चाहते थे कि शेष भारत को मुस्लिम लीग के बेईमान इरादों का पता चले और यह भी मालूम हो कि ढाका में मुस्लिम लीग के उकसावे में आकर हिन्दुओं पर किस तरह के अत्याचार किये गए। लेकिन चूंकि प्रेस पर झूठ बोलने का दबाव था,

इसलिए इस मुद्दे को विधान परिषद में जोरदार आवाज उठाकर सामने लाने के अलावा और कोई उपाय नहीं था। एक बार फिर राजनीतिक चातुर्य दिखाते हुए डॉ. मुखर्जी ने गांधी जी को समर्थन देने के लिए झकझोरा। गांधी जी ने तत्परता दिखाते हुए कांग्रेस अध्यक्ष को कहा कि वे बंगाल में डॉ. मुखर्जी के समर्थन में कांग्रेस विधायकों को सामने आने का निर्देश दे ताकि सदन में इस मामले को उठाने में मदद मिले। इस प्रकार, ढाका में जो कुछ हो रहा था, उसकी जानकारी पूरे देश को मिली।

1941 में डॉ. मुखर्जी ने फजलुल हक को मुस्लिम लीग का साथ छोड़ने तथा कांग्रेस और हिन्दू महासभा के साथ मंत्रिमंडल गठित करने पर राजी कर लिया। फजलुल हक चाहते थे कि वे मुख्यमंत्री बनाए जाएं, शरतचंद्र बोस को उनके बाद की जगह मिले, जबकि श्यामा प्रसाद मुखर्जी कैबिनेट के सदस्य बनाए जाएं। बंगाल के अत्यधिक षड्यंत्रकारी तथा भारतीयों से घृणा करने वाला ब्रिटिश गवर्नर सर जॉन हर्बर्ट ने शरत चंद्र बोस को भारतीय शासन की सुरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार करवा दिया तथा दक्षिण भारत के एक जेल में उन्हें स्थानांतरित करवा दिया। इसके बाद, कैबिनेट में उनके शामिल होने की कोई गुंजाइश ही नहीं बची। अब डॉ. मुखर्जी कैबिनेट के एकमात्र हिन्दू चेहरा हो गये। फजलुल हक से पुराने रिश्ते के कारण उन्होंने कैबिनेट को बहुत अच्छी तरह चलाया। कैबिनेट इतना लोकप्रिय हुआ कि प्रगतिशील प्रजातांत्रिक गठबंधन नाम से पूर्व में जाना जाने वाला कैबिनेट अब 'श्यामा–हक' कैबिनेट के नाम से जाना जाने लगा।

गठबंधन ने राज्य में एक पंथनिरपेक्ष प्रशासन दिया तथा हिन्दुओं को चार साल सताये जाने के बाद अब ऐसी स्थिति बनी कि हिन्दुओं के साथ मुसलमानों की तरह ही समान व्यवहार किये जाने की उम्मीद की जाने लगी। वित्त मंत्रालय तथा अन्य सरकारी विभागों को अपने दक्ष संचालन से डॉ. मुखर्जी ने मंत्रालय को सुचारू रूप से

चलाया जाना सुनिश्चित किया। जुलाई 1942 में बंगाल के गवर्नर को लिखी एक चिट्ठी में डॉ. मुखर्जी ने लिखा, 'ब्रिटिश भारत के इतिहास में पहली बार हमें जो कुछ लोकतांत्रिक संविधान सौंपा गया है, इसमें कई कमियों के बावजूद हिन्दू और मुस्लिम प्रतिनिधियों द्वारा काम किये जाने की जो मांग की गई थी, हम लोगों ने अपने समुदायों को काम के माध्यम से शक्तिशाली रूप से प्रभावित किया है। इस प्रयोग की सफलता स्वाभाविक रूप से भारत के राजनीतिक विकास की राह में खड़ी सांप्रदायिक असामन्जस्य के बेसुरे दलील की पोल खोलेगी'।

मुस्लिम लीग पूरी तरह अलग–थलग कर दी थी और अंग्रेज पहली बार अपनी 'बांटो और राज करो' की नीति की असफलता को लेकर ठगा महसूस कर रहे थे। डॉ. मुखर्जी इस बात को सिद्ध करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ थे कि हिन्दू और मुस्लिम प्रतिनिधि एक साझी समझ की भावना के साथ काम कर सकते हैं। वे इस दृढ़ मत के थे कि बंगाल जैसे समस्याग्रस्त प्रांत में भी अगर नेतृत्व अपने समुदायों को यह भरोसा दिलाने की स्थिति में हैं कि आखिरकार दोनों समुदायों के हित एक दूसरे के साथ होने में ही है और एक बार अगर यह विश्वास दृढ़ हो जाता है, तो शरारत करने वाली शक्तियां स्वाभाविक रूप से शक्तिहीन होकर अंत में समाप्त हो जायेंगी। कहानी यहां तक पहुंच गई कि हक की पार्टी के जो मुसलमान नेता पहले डॉ. मुखर्जी का विरोध करते थे और जो लोग इस व्यवस्था में डॉ. मुखर्जी के साथ असहज थे, उन लोगों को जवाब देते हुए हक को कहना पड़ा, 'सुनिये, आप डॉ. मुखर्जी को नहीं जानते, मैं जानता हूं। वे सर आशुतोष के बेटे हैं। इस बात का कोई मतलब नहीं है कि वे हिन्दू महासभा से संबद्ध हैं। आपको इनसे बेहतर उदार व्यक्ति या हिन्दुओं के बीच रह रहे मुस्लिमों के इनसे बड़े हितचिंतक शायद ही मिले। अगर आपको मुझमें विश्वास है, तो आपको उनमें भी विश्वास रखना चाहिए।' मुस्लिम लीग मंत्रिमंडल के विघटन को देखकर लोगों ने

व्यापक रूप से राहत महसूस की थी। खासकर बंगाल के हिन्दुओं ने। 1937 से 1941 तक लीग मंत्रिमंडल ने हिन्दुओं के खिलाफ भेदभाव किया था तथा उस अवधि में 'पूरे बंगाल की प्रगति धीमी पड़ गई थी।' किन्तु, यह सब बहुत लंबे समय के लिए नहीं था। बंगाल का गवर्नर हर्बर्ट इस मंत्रिमंडल से घृणा करता था। अतः षड्यंत्र करते हुए उसने 1942 में इसे भंग कर दिया। इसी बीच कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का आह्वान किया एवं सभी कांग्रेस नेता तत्काल जेल में डाल दिये गए।

इस बीच अक्टूबर 1942 में बंगाल के मिदनापुर जिले के कॉन्टई शहर में जबरदस्त सुनामी आयी, जिसमें 15 मिनट के भीतर 30,000 लोग मारे गए। इसके परिणामस्वरूप, बड़ी संख्या में लोग अनाथ और बेघर हो गए। उसी समय जापानी सैनिकों ने दक्षिण–पूर्वी एशिया की ओर बढ़ते हुए अंग्रेजों को भगाते हुए बर्मा पर कब्जा कर लिया। इससे हर्बर्ट घबरा गया और उसने बचाव की नीति को अपनाया। सेना के लिए जो खाद्य पदार्थ जरूरी नहीं थे, उन्हें जान–बूझकर नष्ट कर दिया गया। ठीक उसी प्रकार खाद्य पदार्थों के ढुलाई में उपयोग होने वाले साधनों को भी नष्ट कर दिया गया। परिणामस्वरूप चावल की कीमत प्रति मन 2 रुपये से बढ़कर 100 रुपये प्रति मन हो गई। जबरदस्त अकाल पड़ा और इस अकाल में लगभग 15 लाख लोगों की मृत्यु हो गई। साम्राज्यवादी सरकार ने ऐसी स्थिति में भी अटूट राष्ट्रवादी भावना तथा लोगों में क्रांतिकारी उत्साह के कारण प्रभावित इलाकों में चल रहे राहत कार्यों को रोकने का प्रयास अवश्य किया। किन्तु डॉ. मुखर्जी, जो अकाल राहत कार्य में स्वयं लगे हुए थे और इस कार्य में लगे हुए विभिन्न संगठनों को एकजुट करने में समन्वयक का कार्य कर रहे थे, यदि वे इन कार्यों में नहीं लगे होते, तो हताहतों की संख्या कई गुनी अधिक होती।

इस दौरान द्वितीय विश्वयुद्ध (1945) अपने चरम पर था। सभी कांग्रेस नेता जेल में थे। केवल मुस्लिम लीग के सभी नेता बाहर थे और बंगाल में शासन कर रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने देखा कि महात्मा

गांधी का स्वास्थ्य लगातार बिगड़ रहा था, इसलिए उन्हें रिहा करने का निर्णय इस भय से लिया कि उनकी मृत्यु से देश में बड़ी परेशानी खड़ी हो सकती थी। इसके बाद सी.राजगोपालाचारी महात्मा गांधी से मिले और उन्होंने मोहम्मद अली जिन्ना से देश के बंटवारे पर सहमति पाने के लिए गांधी जी को तैयार कर लिया।

बातचीत हुई और निष्फल साबित हुई। लेकिन वार्ता में गांधी जी एवं राजगोपालाचारी पाकिस्तान के मुद्दे पर सहमत हो गए। वार्ता से पहले डॉ. मुखर्जी महात्मा गांधी को लगातार सलाह देते रहे कि वे ऐसी किसी भी बात के लिए सहमत नहीं हों, लेकिन उन्होंने उनकी एक नहीं सुनी और जिन्ना बंटवारे के लिए अड़े रहे।

1945 में युद्ध समाप्त हो गया था तथा कांग्रेस नेता जेल से बाहर आ गये और उनका स्वागत नायक के रूप में हुआ। केन्द्रीय विधान परिषद् का चुनाव हुआ। चुनाव से पहले डॉ. मुखर्जी ने लीग से लड़ने के लिए कांग्रेस के साथ साझे मुद्दे पर कार्य करने की कोशिश की। लेकिन शरद चंद्र बोस अड़े हुए थे तथा उन्होंने डॉ. मुखर्जी को किसी भी तरह की तरजीह नहीं दी। इस समय तक देश में सांप्रदायिक आधार पर पूर्ण ध्रुवीकरण हो चुका था। हिन्दू कांग्रेस के समर्थन में थे और मुसलमान मुस्लिम लीग के साथ थे। मुस्लिम लीग का विरोध करने वाली बंगाल की कृषक प्रजा पार्टी तथा पंजाब की यूनियनिस्ट पार्टी जैसी मुस्लिम पार्टियों ने या तो मुस्लिम लीग के सामने घुटने टेक दिये या फिर मुस्लिम लीग में खुद का विलय कर लिया। लीग के खिलाफ दृढ़ता के साथ खड़े होने वाले एक महत्त्वपूर्ण मुस्लिम नेता अल्लाह बक्श की हत्या कर दी गई। इस ध्रुवीकरण के परिणामस्वरूप डॉ. मुखर्जी कांग्रेस की तुच्छता से बहुत अपमानित और असहाय महसूस कर रहे थे। इसलिए चुनाव प्रचार प्रक्रिया के दौरान उन्हें दिल का दौरा पड़ा था और वे पूरी तरह बिस्तर पर पड़ गये।

1946 में ब्रिटेन में बहुदलीय बार कैबिनेट की जगह लेबर

पार्टी की सरकार बन गई तथा क्लीमेंट एटली नये प्रधानमंत्री बने। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता की संभावनाओं का पता लगाने के लिए 'कैबिनेट मिशन' नामक एक शक्तिशाली समिति की स्थापना कर दी। कैबिनेट मिशन ने एक 'समूह योजना' बनायी, जिसके अंतर्गत भारत का विभाजन नहीं होना था। इसे प्रारंभ में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया। उसी समय, जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद की जगह कांग्रेस के अध्यक्ष बने और अचानक किसी से विचार विमर्श किये बिना, 'समूह योजना' की स्वीकृति को अस्वीकार दिया गया। जिन्ना ने भी तुरंत अपनी स्वीकृति वापस ले ली तथा 16 अगस्त को 'प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस' की घोषणा कर दी। इस दिन के बाद चार दिनों तक कलकत्ता में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जबरदस्त खून–खराबा चलता रहा, जिसमें 15,000 लोग मारे गए। डॉ. मुखर्जी इस समय तक बंगाल के प्रांतीय विधान परिषद् के सदस्य हो गये थे। इस समय बंगाल पर आलसी और रसिक मिजाज वाले हुसैन शहीद सुहरावर्दी के नेतृत्व में मुस्लिम लीग का शासन था और उसी ने हत्याकांड की साजिश रची थी। प्रांतीय परिषद में डॉ. मुखर्जी ने सुहरावर्दी के दंगा भड़काने वाली भूमिका की जबरदस्त भर्त्सना की। आश्चर्य किन्तु यह था कि दंगों के बाद भी किसी अखिल भारतीय कांग्रेस नेता ने कलकत्ता का दौरा करने की आवश्यकता नहीं समझी, शायद इस भय से कि उन्हें कहीं मुस्लिम विरोधी न मान लिया जाए।

इसके बाद कांग्रेस ने व्यावहारिक रूप से विभाजन को स्वीकार लिया। इसी बीच लॉर्ड माउंटबेटन को भारत का वायसराय बना दिया गया और माउंटबेटेन तथा उनकी पत्नी एडविना माउंटबेटन ने मिलकर जवाहरलाल नेहरू को बंटवारे के लिए तैयार कर लिया। नेहरू जी प्रधानमंत्री बनने की जल्दी में थे। 3 जून 1947 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने भारत की आजादी की घोषणा तो की किन्तु भारत के विभाजन के साथ इस घोषणा में बंगाल और पंजाब प्रांत का

विभाजन सम्मिलित था।

भारत विभाजन का फैसला हो जाने के बाद डॉ. मुखर्जी ने बंगाली हिन्दुओं के लिए मातृभूमि के समर्थन में जनता की राय बनाकर मुस्लिम बहुल बंगाल के विभाजन के लिए शासन प्रणाली को मजबूर कर दिया तथा बंगाल के हिन्दू इलाके को भारत के साथ रहने पर विवश किया। डॉ. मुखर्जी ने अपने प्रस्ताव के पक्ष में जनता की राय बनाने तथा उसे लामबंद करने का कार्य शुरू किया। बंगाल विभाजन को लेकर बनायी गई अपनी योजना पर उनके सशक्त तर्क तथा उनकी जबरदस्त वकालत रंग लायी। वे कांग्रेसियों सहित बंगाल के अन्य नेताओं के दिल भी बड़ी संख्या में जीतने में सफल रहे। मार्च 1947 में, केन्द्रीय विधान परिषद के बंगाली हिन्दू सदस्यों ने हिन्दू महासभा के एन.सी.चटर्जी एवं आईएनए के ए.सी.चटर्जी के समर्थन से एक प्रस्ताव स्वीकार किया। इसके बाद डॉ. मुखर्जी ने बंगाल के सभी हिस्सों से हिन्दू प्रतिनिधियों के दो दिवसीय सम्मेलन का आह्वान किया। हिन्दू महासभा के सदस्यों के अलावा पूरे प्रांत से बड़ी संख्या में अन्य प्रतिनिधियों को बुलाया गया। आर.सी.मजूमदार, डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी जैसे जाने माने बुद्धिजीवी तथा विद्वान, सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी हेमेन्द्र प्रसाद घोष, लॉर्ड सिन्हा के अलावा और भी बहुत सारे लोगों ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन में सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पास किया गया कि 'बंगाल के हिन्दू बहुल क्षेत्र के साथ एक अलग प्रांत का निर्माण किया जाए।' डॉ. मुखर्जी की इस बंगाल विभाजन योजना को जबरदस्त समर्थन मिला। जनता की राय की गणना अमृत बाजार पत्रिका जैसे अग्रणी दैनिक पत्र ने करवायी। 98.6 प्रतिशत लोगों ने बंगाल विभाजन के पक्ष में अपनी राय दी और सिर्फ 0.6 प्रतिशत लोगों ने ही संयुक्त बंगाल के पक्ष में अपना मत दिया। अप्रैल में डॉ. मुखर्जी वायसराय माउंटबेटेन से मिले तथा स्पष्ट किया कि बंगाल विभाजन आखिर क्यों जरूरी है। इस प्रकार डॉ. मुखर्जी के सशक्त हस्तक्षेप तथा अद्वितीय नेतृत्व क्षमता के

कारण इस समय बंगाल के एक हिस्से को बचाया जा सका तथा ऐतिहासिक तथा रणनीतिक रूप से एक महत्त्वपूर्ण शहर कलकत्ता को मुस्लिम लीग शासित पाकिस्तान में जाने से भी रोका जा सका। निश्चित रूप से डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के जीवन की यह सबसे बड़ी उपलब्धि थी। मुस्लिम लीग ने इस विभाजन का पुरजोर विरोध किया, क्योंकि वह पूरा बंगाल विशेष रूप से कलकत्ता को पाकिस्तान का हिस्सा बनाना चाहती थी। जब उन्हें लगा कि वे इसे सीधे–सीधे हासिल नहीं कर सकते, तब उन्होंने कुछ साख गंवा चुके कांग्रेस नेताओं को प्रभावित करने की कोशिश की और उन्होंने एक नये विचार की खोज की ताकि एक ऐसे संप्रभु बंगाल का निर्माण किया जाए, जो भारत और पाकिस्तान दोनों से आजाद रहे। डॉ. मुखर्जी इसके विरूद्ध लड़े तथा इस विचार को ध्वस्त करने में सफल रहे। बंगाल का कलकत्ता सहित बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान में जाने से बच गया।

15 अगस्त 1947 को भारत के आजाद होने के पश्चात डॉ. मुखर्जी हिन्दू महासभा में थे, जबकि ब्रिटिश सरकार कांग्रेस को पूर्णतः सत्ता हस्तांतरित कर चुकी थी। 1946 के शुरू में, डॉ. मुखर्जी अपने पुराने निर्वाचन क्षेत्र कलकत्ता विश्वविद्यालय विधानसभा क्षेत्र से बंगाल विधान परिषद के लिए निर्विरोध चुन लिये गए तथा जुलाई में उनके राजनीतिक व्यक्तित्व की लोकप्रियता तथा स्वीकृति इतनी अधिक थी कि एक नये संविधान की रूपरेखा के निर्माण पर कार्य करने के लिए बंगाल कांग्रेस द्वारा भारत की संविधान सभा के लिए उन्हें नामांकित किया गया। संविधान सभा में उनका प्रदर्शन अत्यंत प्रभावशाली था। उन्होंने संसदीय संरचना में अपनी सर्वविदित कुशलता का प्रदर्शन किया और एक से अधिक अवसरों पर तर्कपूर्ण हस्तक्षेप किया। कुछ सुझावों के उत्तर में उन्होंने संविधान सभा के कार्यों में बाधा डालने के लक्ष्य से जो कुछ कहा, वह उनके उल्लेखनीय साहस के उदाहरण हैं। डॉ. मुखर्जी ने इस बात को जैसे

ही महसूस किया कि संभावित गड़बड़ियों के पीछे कुछ साम्राज्यवादी पदाधिकारियों के हाथ हैं, तो उन्होंने कहना शुरू किया,'महाशय मैं कहूंगा कि हम ब्रिटिश जनता से आखिरी बार कहेंगे कि हम आपके साथ मैत्रीपूर्ण संबंध चाहते हैं। आपने व्यापारियों के रूप में भारत में अपनी शुरुआत की थी। आप महान मुगल के सामने यहां याचक बनकर आये थे। आप इस देश की दौलत को अपने साथ ले जाना चाहते थे। नसीब आपके पक्ष में था। जालसाजी, धोखेबाजी तथा बल प्रयोग के जरिये आप खुद को स्थापित कर पाये। ये सब इतिहास की बातें हैं, आपने इस देश पर शासन किया। लेकिन इसमें आपने यहां के लोगों की इच्छा का सहयोग नहीं लिया। आपने पृथक निर्वाचन क्षेत्र की नीति लागू करके भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का घालमेल किया। यह सब भारतीयों द्वारा नहीं किया गया। यह सब आपने किया और केवल इसलिए कि इस देश पर आपका शासन बना रहे।

डॉ. मुखर्जी की श्रेष्ठता संसदीय कार्यप्रणाली में थी, उनकी दक्षता संसदीय बहस में थी। इन दोनों ने मिलकर उन्हें प्रसंशनीय और लोकप्रिय बना दिया। 'देश की स्वतंत्रता के लिए सेवा के रिकॉर्ड' के साथ 'सर्वश्रेष्ठ लोकछवि के रूप में उनकी प्रतिष्ठा' राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत हो गई। उस समय तक वे बंगाल के निर्विवाद नेता बन गये थे। वे अब भी 'हिन्दू महासभा' का नेतृत्व कर रहे थे। महात्मा गांधी ने आग्रह किया कि भारत के पहले मंत्रिमंडल में डॉ. मुखर्जी को शामिल किया जाए। इसके लिए गांधी जी ने तर्क दिया कि आजादी संयुक्त प्रयास का नतीजा था और न सिर्फ कांग्रेस बल्कि देश की सभी राष्ट्रवादी ताकतों के संघर्ष के बल पर यह स्वतंत्रता प्राप्त हुई थी। इसलिए पहले मंत्रिमंडल में व्यापक प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि सही अर्थों में इसमें राष्ट्रीय सरकार की झलक मिले। डॉ. मुखर्जी प्रारंभ में हिचकिचा रहे थे क्योंकि उन्होंने विभाजन को लेकर कांग्रेस की कायरतापूर्ण सहमति को निकट से देखा था। लेकिन

गांधी की तरह वीर सावरकर भी चाहते थे कि वे कैबिनेट में शामिल हो जाएं ताकि उन्हें स्वतंत्र भारत में कार्य करने और सेवा करने का अवसर मिल सके एवं राष्ट्रीय सरकार उनके कारण सशक्त हो सके। सावरकर संकीर्ण नहीं थे। उन्होंने स्वतंत्र भारत की प्रथम सरकार को राष्ट्रीय सरकार के रूप में देखा, जिसे भारत की संप्रभुता—एकता के लिए दृढ़ता से काम करना था। कांग्रेस और उसके नेता बेहद संकीर्ण थे, जिन्होंने भारत के स्वातंत्र्य समर में वीर सावरकर की भूमिका तथा भारत की एकता को बनाए रखने के लिए उनके बलिदान को मिटाने की कोशिश की थी। डॉ. मुखर्जी सरकार में शामिल हो गए तथा उद्योग एवं आपूर्ति मंत्री बनाये गए। यद्यपि उनकी स्वाभाविक रूचि तथा विशेषज्ञता का क्षेत्र शिक्षा था। अगर उन्हें अपने युवावस्था के दिनों से विशेषज्ञता वाला क्षेत्र शिक्षा मंत्रालय दे दिया गया होता, तो डॉ. मुखर्जी ने शायद भारत की शिक्षा नीति को एक नई दिशा मिली होती तथा राष्ट्रीयता राष्ट्रीय, सेवा तथा देशभक्ति के आदर्श से भरपूर युवा मानस को नये सांचे में ढालना सरल होता। लेकिन उस समय देश के सामने औद्योगिक तथा आर्थिक चुनौतियां कम नहीं थी। ऐसे में डॉ. मुखर्जी ही ऐसे अकेले नेता थे, जो निर्णायक समय में कुशल तथा अनुभवी नेतृत्व क्षमता से परिपूर्ण थे।

उल्लेखनीय है कि सरदार पटेल स्वतंत्र भारत के पहले मंत्रिमंडल में डॉ. मुखर्जी को शामिल किये जाने के जबरदस्त पक्षधर थे। सरदार पटेल बंगाल विभाजन की मांग में डॉ. मुखर्जी की ऐतिहासिक भूमिका के बड़े प्रशंसक थे और वे मानते थे कि केवल डॉ. मुखर्जी के कारण पाकिस्तान विभाजन के लिए जिम्मेदार जिन्ना के पाकिस्तान से इस भाग को बचाया जा सका। वे डॉ. मुखर्जी के उस विरोध के भी बड़े कायल थे, जब मुखर्जी ने एक संप्रभु आजाद बंगाल वाले मुस्लिम लीग के सपने का जोरदार विरोध किया था। दोनों मुद्दों पर उनकी नेतृत्वक्षमता ने भारत और हिन्दुओं को बचाया। कैबिनेट में डॉ. भीमराव अंबेडकर तथा डॉ. मुखर्जी को शामिल करवाने में सरदार

पटेल की निर्णायक भूमिका थी। दूसरी तरफ डॉ. मुखर्जी सरदार पटेल के बड़े समर्थक थे तथा भारतीय एकता को बनाने के सरदार पटेल के महान प्रयासों में डॉ. मुखर्जी की उपस्थिति ने उनके हाथों को मजबूत करने का कार्य किया। विशेषकर हैदराबाद के मामले में वे सरदार पटेल के साथ लगातार खड़े रहे और कार्रवाई की मांग करते रहे और इस तरह वे नेहरू के कोपभाजन भी बने। बतौर मंत्री रहते हुए उनका हिंदू महासभा के अन्य नेताओं के साथ गंभीर मतभेद था। वे मानते थे कि समय के साथ नये परिप्रेक्ष्य में महासभा को और विकसित होने की आवश्यकता है। किन्तु डॉ. मुखर्जी की सलाह को नहीं माना गया। तब उन्होंने 1948 में पार्टी छोड़ दी। इसके बाद वो बिना पार्टी के नेता थे और यह स्थिति 1950 तक बनी रही।

अपने दो सालों से थोड़े ज्यादा के छोटे से कार्यकाल में उद्योग एवं आपूर्ति मंत्री के रूप में डॉ. मुखर्जी ने जो कार्य किये, वे बेहद प्रेरणादायक थे। अविभाजित बंगाल के वित्तमंत्री के रूप में उनका अनुभव तथा चीजों पर उनकी असामान्य पकड़ निर्णायक थी। असल में, इस कार्यकाल में उन्हें भारत की औद्योगिक नीति की नींव डालने का एक अवसर मिला तथा आने वाले वर्षों में देश के औद्योगिक विकास की नींव रखी गई। इस दौरान एक ओर शैक्षिक तथा सांस्कृतिक जीवन की क्षति तो हुई, किन्तु दूसरी ओर आर्थिक तथा उद्योग नीति की प्राप्ति भी हुई थी।' डॉ. मुखर्जी की प्रारंभिक जीवनी लिखने वालों में से एक ने टिप्पणी की है, 'ढ़ाई सालों के लिए उद्योग तथा आपूर्ति मंत्री के रूप में उनके कार्यों का रिकॉर्ड, उनके प्रति विश्वास को न्यायोचित ठहराता है। पूर्व वर्चस्ववादी रूप से कृषि प्रधान देश में औद्योगिकीकरण की समस्याओं की वास्तविक समझ तथा उनकी ठोस बौद्धिक पकड़ उनके साथ थी। वे मानते थे कि भारत के औद्योगिक विकास को क्रूर विदेशी सरकार द्वारा जान बूझकर रोका गया था।' डॉ. मुखर्जी की बौद्धिक प्रखरता, मानसिक दृढ़ता तथा चट्टानी इरादे, उनके प्रति सहज ही सम्मान की भावना

जगाते थे और अधिकारियों के बीच सभी वर्गों की तरफ से उन्हें पूरा समर्थन मिलता था। स्वतंत्र भारत के निर्माण वाले अधिकांश वर्षों में औद्योगिक समस्याओं तथा सूत्रबद्ध औद्योगिक नीतियों का संचालन उन्होंने जिस तरह से किया, उसकी प्रशंसा उनके विरोधी भी किया करते थे। औद्योगिक दिशा को लेकर डॉ. मुखर्जी के पास एक स्पष्ट विचार था कि भारत को आगे ले जाने की आवश्यकता थी और वे इस बात से आश्वस्त थे कि भारत जैसे देश ने सिर्फ राजनीतिक आजादी हासिल की थी, 'देश की रक्षा के लिए खासकर उन आवश्यक वस्तुओं में आत्मनिर्भरता आवश्यक है और इसके लिए निजी तथा सरकारी सभी तरह के संसाधनों को संगठित करना प्राथमिक कार्यों में से एक है ताकि उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सहकारी प्रयास किये जा सकें।'

डॉ. मुखर्जी द्वारा की गई भारत के औद्योगिक विकास के प्रारूप की स्थापना जैसे महान् योगदान की चर्चा कभी नहीं की गई और न ही इतिहास की पुस्तकों में उन्हें कोई स्थान मिला। स्वतंत्र भारत के प्रथम उद्योग मंत्री के रूप में उन्होंने जो कुछ किया, उसके कुछ विवरण, आंकड़ों, तथा इस क्षेत्र में उनके प्रयास और कुछ विचारों पर दृष्टि डालना दिलचस्प होगा। डॉ. मुखर्जी, उन शुरुआती वर्षों में, 'भारत के औद्योगिकीकरण में अपनी भूमिका निभाते हुए, समुचित सरकारी नियमन एवं नियंत्रण के अंतर्गत निजी उद्यमों के विकास की पूरी गुंजाइश' के लिए, जो कुछ उत्कृष्टतम संभव विचार हो सकते थे, उन्होंने दिये। वे चाहते थे कि राज्य अपने छोटे संसाधनों का इस्तेमाल उद्योग क्षेत्र के विकास के लिए करे, जिसका विकास निश्चित रूप से देश की रक्षा के लिए अनिवार्य था। और जिसके लिए निजी पूंजी आसानी से नहीं मिलने वाली थी। वे देश की वास्तविक समस्याओं के उजाले में शीघ्र लेकिन व्यवस्थित रूप से देश के औद्योगिकीकरण के लिए निजी एवं सार्वजनिक उद्यमों के बीच एक तार्किक समन्वय चाहते थे। इस नीति को तैयार करने में वे देश की जरूरतों और परिस्थितियों के एक यथार्थवादी आकलन द्वारा

निर्देशित थे, न कि अमूर्त या हठधर्मिता के सिद्धांतों द्वारा, जिनसे उनका कोई लगाव नहीं था।

यह एक ऐसा समय था, जब पश्चिम से प्रशिक्षित साम्यवादी विचारक द्वारा विफल आर्थिक सिद्धांतों का मजबूती से दुष्प्रचार किया जा रहा था। वे भारत में एक सर्वहारा स्वर्ग को विकसित करने के लिए उत्सुक दिख रहे थे। यह वह समय भी था जब साम्यवादियों ने भारत की औद्योगिक गति के खिलाफ हिंसक हड़ताल और 'बंद' के माध्यम से अवरोध उत्पन्न करने शुरू किए। डॉ. मुखर्जी हमेशा उत्पादन को बढ़ाने के हित में 'श्रमिकों तथा पूंजी के बीच में सहयोग' देने के लिए खड़े रहे। प्रगति के उपायों के रूप में वर्ग संघर्ष की धारणा उन्हें कभी प्रभावित नहीं कर पायी। अभी तक उन्होंने सभी नियोक्ताओं के मामले पर श्रम के सहयोग का समर्थन नहीं किया था। "वे श्रम और पूंजी के बीच लाभ की साझेदारी के हिमायती थे, ताकि उद्योग में एक वास्तविक हित को विकसित करने के लिए श्रमिकों को सक्षम बनाया जाए। श्रमिकों के लिए श्रमिक कल्याण के माध्यम से उनमें आत्मबल भरने के लिए वे हमेशा व्यग्र और चिंतित दिखे। पूंजी की समस्या के प्रति वास्तविक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण नियोक्ताओं को भरोसा दिलाने वाला था।

खुले दिमाग के साथ डॉ. मुखर्जी लोगों के लिए उपयोगिता तथा उसकी व्यावहारिकता की कसौटी पर सभी योजनाओं तथा नीतियों को आंकते थे। संपूर्ण राष्ट्रीयकरण पर उनकी मूल आपत्ति थी। उनका मानना था, ''सभी उद्योगों को राष्ट्रीयकृत करने तथा उन्हें पूरी निपुणता के साथ चलाने के लिए भारत के पास आवश्यक संसाधनों, अनुभवों तथा प्रशिक्षित लोगों की कमी है।" एक मजबूत आर्थिक ढांचे के विकास तथा युवाओं को कुशल बना कर ही एक सुदृढ़ औद्योगिक आधार का निर्माण कौशलयुक्त करने के वे घोर पक्षधर थे। इस अवधि के उनके भाषणों में इन विचारों तथा दृष्टिकोण की झलक मिलती है। 1949 में दिल्ली पॉलिटेक्निक के साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी

एसोसिएशन के कार्यक्रम में उन्होंने कहा, "लोगों की, बड़ी संख्या में आर्थिक सुरक्षा और उनकी जीवनशैली में सुधार–ही वह आधार है, जिसपर सभी प्रकार की राजनीतिक संस्थाएं निर्भर करती हैं। इसलिए राजनीतिक स्वतंत्रता का न तो तब तक कोई अर्थ है और न ही उसमें स्थायित्व है, जब तक कि उसके आर्थिक पक्ष को गहराई से महसूस न किया जाए।" इस दृष्टि से वे "कृषि तथा उद्योग में एक व्यापक तकनीकी क्रांति" को आवश्यक मानते थे ताकि आम लोगों की जीवनशैली को उन्नत किया जा सके। औद्योगिक मोर्चे पर किये जा रहे प्रयासों का उल्लेख करते हुए डॉ. मुखर्जी ने कहा कि 'बड़ी संख्या में बहुत महत्त्वपूर्ण उद्योगों की स्थापना' के लिए खुदाई की जा रही है तथा 'जब ये उद्योग सही अर्थों में स्थापित हो जायेंगे, तभी वह ठोस जमीन बन पायेगी, जिस पर हमारे देश का आर्थिक विकास आगे बढ़ेगा।' 1948 में भारत सरकार की औद्योगिक नीति की घोषणा में डॉ. मुखर्जी के इस विचार का प्रतिबिंब दिखता है। इस प्रपत्र में 'योजनाबद्ध विकास को सुनिश्चित करने की सरकार का दायित्व तथा राष्ट्रीय विकास में सरकार के साथ मिलकर उद्योगों के नियमन के साथ उनकी भूमिका के साथ मिश्रित अर्थव्यवस्था की परिकल्पना थी।' डॉ. मुखर्जी ने भारत के लघु तथा कुटीर उद्योगों को पुनर्व्यवस्थित तथा विकसित किये जाने पर बल दिया तथा 1948 और 1950 के बीच उनके कार्यकाल के दौरान 'अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड', 'अखिल भारतीय हस्तकरघा बोर्ड' तथा 'खादी एवं ग्रामीण उद्योग बोर्ड' स्थापित किये गए ताकि इन लघु एवं कुटीर उद्योगों के बचे रहने तथा उन्हें विकसित होने के लिए इन संगठनों के माध्यम से उन्हें आवश्यक वित्त पोषण किया जा सके। उन्हीं के कार्यकाल में वस्त्र अनुसंधान संस्थान ने अपना आकार लिया। जुलाई 1948 में एक सरकार प्रायोजित संस्थान औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना की गई। जिसका कार्य एक निवेश बैंक की तरह पुनर्भुगतान की सरकारी गारंटी पर निजी बचत का संग्रह करना तथा अग्रिम

राशि के रूप में उसे वितरित करना और साथ ही औद्योगिक ऋण धारियों को लंबी अवधि के लिए ऋण देना था।

एक मंत्री के रूप में डॉ. मुखर्जी को स्वतंत्र भारत की आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने वाली सबसे सफल चार परियोजनाओं की शुरुआत करने का श्रेय जाता है। 1948 में, पश्चिम बंगाल के चित्तरंजन में स्वचालित इंजन कारखाने की शुरुआत हुई जिसमें 1950 में 'देशबंधु' नाम से एसेंबल किये गए पार्ट्स से देश के प्रथम भारतीय स्वचालित इंजन का निर्माण किया गया। डॉ. मुखर्जी ने हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट फैक्ट्री को लिमिटेड कंपनी के रूप में पुनर्गठित किया, जिसने शानदार काम करते हुए इंडियन एयर फॉर्स के लिए जेट एयरक्राफ्ट की एसेंबलिंग की। नागरिक तथा रक्षा उद्देश्यों के प्रशिक्षण के लिए एचटी2 का, भारतीय रेलवे के लिए 'स्टील रेल कोच' का, तथा विभिन्न राज्यों तथा निजी परिवहन प्राधिकरण के लिए बसों के बाहरी ढांचे का निर्माण किया गया। इस प्रकार, डॉ. मुखर्जी की कुशल और योग्य नेतृत्व में 1947–48 तथा 1948–49 में विश्वयुद्ध के दौरान हुई क्षति को लाभ में बदल दिया गया। कंपनियों का विक्रय 1949–50 में लगभग 2 करोड़ तक हो गया। उस समय हिन्दुस्तान एयरक्राफ्ट कारखाने द्वारा निर्मित भारतीय रेलवे के नये मॉडल थर्ड क्लास कोच का निर्माण सही मायने में डॉ. मुखर्जी की व्यक्तिगत रूचि का ही परिणाम था।

भिलाई में स्टील प्लांट की कल्पना डॉ. मुखर्जी ने ही की थी। परियोजना को लेकर उनका सकारात्मक दृष्टिकोण तथा विस्तृत सर्वेक्षण कि निर्धारित परिवेश में उसको चलाना संभव था या नहीं, आदि इससे उनकी प्रशासकीय क्षमता का पता चलता है। भारत में इस्पात उत्पादन की गुणवत्ता तथा मात्रा की मांग को पूरा करने के लिए उन्होंने 1955 में एक नये स्टील प्लांट की स्थापना का कार्य तभी संभव हो पाया था जब पूर्व में डॉ. मुखर्जी द्वारा भिलाई स्टील प्लांट की स्थापना को लेकर की गई संधि सामने आयी। डॉ. मुखर्जी के

कार्यकाल में ही न्यूजप्रिंट के उत्पादन के लिए कदम उठाये गए। इसके लिए मध्य प्रांत, (मध्यप्रदेश) में राष्ट्रीय न्यूजप्रिंट तथा पेपर मिल्स लिमिटेड की स्थापना की गई। इसी तरह बिहार में धनबाद के नजदीक सिंद्री में खाद कारखाने की स्थापना डॉ. मुखर्जी की ही कोशिश का नतीजा था। डॉ. मुखर्जी चाहते थे कि भारत खाद उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल करे। हमेशा की तरह इस मोर्चे पर भी उनकी दीर्घकालिक दृष्टि के कारण इस 'विशाल और आधुनिक कारखाने' में अक्टूबर 1951 से उत्पादन शुरू हो गया।

इसी प्रकार, बहु प्रयोजन दामोदर घाटी निगम (डीवीसी) डॉ मुखर्जी की एक और बड़ी उपलब्धि था। उनके कुशल प्रबंधन का ही चमत्कार था कि उन्होंने केन्द्र सरकार तथा बिहार एवं बंगाल सरकार को विकास के लिए आपस में सहयोग करने के लिए एक साथ ला दिया। दामोदर घाटी निगम बिहार व बंगाल दोनों राज्यों में फैली एक संयुक्त परियोजना थी। यह डॉ. मुखर्जी की दूरदर्शिता के प्रति एक श्रद्धांजलि है कि डीवीसी अपने अस्तित्व में आया तथा 'सिंचाई, जल आपूर्ति, उत्पादन और ऊर्जा का संचरण के लिए योजनाओं को बढ़ावा देना तथा उसका संचालन–पन बिजली और तापीय बिजली' जिसके प्रमुख कार्यों में से थे। साथ ही डीवीसी वाले आस–पास के क्षेत्रों में दामोदर नदी में बाढ़ नियंत्रण के लिए योजनाओं का क्रियान्वयन, 'जनस्वास्थ्य तथा कृषि, औद्योगिक एवं आर्थिक स्वास्थ्य' को स्थापित करना, इसके अन्य उद्देश्य थे।

इन बड़े और विशाल औद्योगिक योजनाओं के साथ–साथ डॉ. मुखर्जी लघु उद्योगों के प्रति भी बेहद संवेदनशील थे तथा उनकी समस्याओं को समाप्त करने, उनकी स्थिति को सुदृढ़ बनाने तथा उनकी नींव को मजबूत करने के लिए कठोर श्रम किया। तमिलनाडु स्थित माचिस का निर्माण करने वाले लगभग 200 लघु कुटीर उद्योगों में उन्होंने हस्तक्षेप किया। पूरे भारत में स्थित, बड़े पैमाने पर फैले माचिस निर्माण करने वाली स्वीडिश कंपनी तथा कुटीर उद्योगों में

काम करने वालों की दयनीय दशा जो कि दोनों कंपनियों के बीच की जबरदस्त प्रतिस्पर्धा तथा विभाजन के कारण, पश्चिमी पाकिस्तानी बाजार के हाथ से चले जाने के कारण हुई थी सुधारने के लिए उन्होंने हाथ से निर्मित माचिस पर उत्पाद शुल्क में उल्लेखनीय कटौती कर जबरदस्त राहत दी। उन्होंने सभी जगह पर लघु स्तर के उत्पादकों को अपने माल पहुंचाने के लिए परिवहन व्यवस्था को आसान बनाया तथा कच्चे माल की आयात के लिए सुविधा देकर उन्होंने कई और राहतें उपलब्ध करायी। उनके मंत्रालय ने मद्रास सरकार को निर्देश दिया कि वे इन कुटीर उद्योगों के श्रमिकों को सहकारी संगठनों के अंतर्गत लाये तथा कच्चे माल की आपूर्ति एवं तैयार माल के वितरण को सहज बनाने के लिए उसकी राशि का उपयोग करते हुए उनका वित्तीय पोषण करे, क्योंकि इससे उनकी 90 प्रतिशत समस्याओं का समाधान हो जाता है।

इसी तरह, उन्होंने 'न सिर्फ भारत के आयात व्यापार में वृद्धि के लिए आवश्यक, अपितु निरंतर रोजगार पाते रहने के लिए भी ऊनी हथकरघा उद्योग की समस्याओं तथा सामना कर रही चुनौतियों से निपटने में भी रुचि दिखायी। इस उद्योग का 75 प्रतिशत हिस्सा उत्तर प्रदेश, पंजाब, कश्मीर तथा राजस्थान में केन्द्रित है। डॉ. मुखर्जी ने सबसे पहले उनकी समस्याओं को चिह्नित किया, फिर ठोस तरीके से उनका निदान किया। इस क्षेत्र में श्रमिकों को तकनीकी मार्गदर्शन उपलब्ध कराने की समस्या को हल करने के लिए उन्होंने केन्द्रीय ऊन प्रौद्योगिकी संस्थान की शुरुआत की, जो संस्थान विनिर्माण के सभी चरणों में छात्रों को बारी–बारी से प्रशिक्षित कर उन्हें उन्नत उपकरणों में ग्रामीण श्रमिकों को प्रशिक्षित कर तैयार कर सके। विपणन के मुद्दे को हल करने के लिए डॉ. मुखर्जी ने दिल्ली में 'सेंट्रल कॉटेज एम्पोरियम' के विचार को बढ़ावा दिया। इस इम्पोरियम का उद्देश्य प्रांतों में बनाये जा रहे सामानों को बाजार उपलब्ध कराना तथा उनका प्रचार–प्रसार करना था। विदेशों में भारतीय व्यापार

आयुक्तों को निर्देश दिया गया कि वे प्रदर्शनियों, विक्रय तथा प्रचार–प्रसार कार्यक्रमों का आयोजन करवायें ताकि भारतीय हथकरघा उत्पाद को बढ़ावा मिल सके। सदियों से चल रहे भारतीय रेशम उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए, डॉ. मुखर्जी ने 1949 में केन्द्रीय रेशम बोर्ड की स्थापना की, जिससे इस उद्योग को उत्प्रेरणा मिली। इसी तरह, उन्होंने भारत में सूती हथकरघा तथा सूती वस्त्र उद्योगों को उन्नत करने तथा उसे आगे बढ़ाने के लिए आवाज मुखर की।

एक रोचक घटना इस बात को प्रदर्शित करने के लिए उल्लेखनीय है कि डॉ. मुखर्जी बतौर प्रशासक अपने मंत्रालय के संचालन को लेकर कितने ईमानदार और किस सीमा तक सावधान रहते थे। एक 'आपूर्ति विभाग के भंडारण खंड के कुछ अधिकारियों द्वारा एक संदेहपूर्ण लेन–देन' के बारे में एक निहित स्वार्थी वर्ग ने कानाफूसी अभियान शुरु कर दिया। कथित रूप से उन पर आरोप लगाया गया कि 'एक मामूली रकम के लिए टूथब्रश और कंघी के एक हिस्से को बेच दिया गया है, हालांकि उसकी कीमत बहुत ज्यादा थी।' इस संबंध में संसद में सवाल उठाए गए। सुबह 9.30 बजे डॉ. मुखर्जी के सामने कार्यालय कर्मचारियों द्वारा सामान्य टिप्पणी के साथ पूरे मामले की फाइल लायी गई। लगभग सुबह 10.30 बजे वे संसद पहुंच गए और तत्काल जवाब देना शुरू कर दिया।

प्रश्नः क्या यह सच है कि बड़ी मात्रा में इन सामानों के बदले बेहद छोटी रकम ही उपलब्ध हुई ?

उत्तरः हां।

प्रश्नः क्या यह सच है कि सामान अच्छी हालत में थे ?

उत्तरः कुछ अच्छी हालत में थे और कुछ बुरी हालत में थे।

प्रश्नः क्या उन सामानों की हालत इतनी बुरी थी कि उससे ज्यादा पैसे नहीं बनाये जा सकते थे ?

उत्तरः हां। और तुरंत ही डॉ. मुखर्जी ने अपनी जेब से बड़ी संख्या में बिना दांत वाले बेकार टूथब्रश निकालकर सामने रख दिये। सदस्यों ने इन बेकार सामानों पर नजर डाली तथा उन्होंने अपने सवाल वापस ले लिये कि आखिर इतने खराब सामान कैसे बेचे जा सकते थे। उनके अपने विभाग के अधिकारी भी हतप्रभ थे कि इतने कम समय में इतने सामान इस तरह से अपने साथ कैसे ले जा सके।

इसी बीच, भारत के महाबोधि समाज के प्रथम गैर बौद्ध अध्यक्ष के रूप में, डॉ. मुखर्जी ने दक्षिण—पूर्वी एशिया के बौद्ध मतावलंबी देशों, खासकर बर्मा (अब म्यांमार) तथा सिलोन (अब श्रीलंका), कोलंबिया तथा तिब्बत (अब तक चीन द्वारा कब्जे में नहीं लिया गया था) के साथ संबंध जोड़ने की पहल भी की। इन संबंधों को सुदृढ़ करने के लिए डॉ. मुखर्जी इंग्लैण्ड से बुद्ध के दो शिष्यों, महामोगलाना तथा सारीपुत्त के अवशेष ले आये तथा धुर दक्षिण एशियाई क्षेत्र के नेताओं के आमंत्रण पर डॉ. मुखर्जी उन देशों के लिए पावन अवशेषों का एक हिस्सा ले गये और उन्हें इन देशों ने अपने राजकीय सम्मान से सम्मानित किया। कंबोडिया के मशहूर राजकुमार नोरोदम सिंहानुक ने डॉ. मुखर्जी को अपने यहां उन अवशेषों के साथ आमंत्रित किया। डॉ. मुखर्जी के उस भाषण को सुनने के लिए लगभग पांच लाख लोग जुटे, जिसमें उन्होंने बुद्ध के संदेश के बारे में कहा तथा नये एशियाई युग को लाने के लिए बताया कि किस तरह भारत तथा सुदूर दक्षिण एशियाई देश एक साथ आ सकते हैं। यह सिर्फ डॉ. मुखर्जी के अथक प्रयास का ही नतीजा था कि भारत सरकार की ओर से बर्मा के लोगों के सामने एक 'स्थायी कृतज्ञता' के रूप में उस पावन अवशेष का प्रदर्शन किया जा सका। इस अवशेष को यांगून के बाहरी इलाके के पौराणिक काबा—ऐ— पैगोडा में स्थापित किया गया था। बर्मा के प्रधानमंत्री, यू नू ने यह कहते हुए पत्र लिखा, 'हमारे लोग मैत्रीपूर्ण इस महान् पावन कार्य के कारण सदा के लिए डॉ. मुखर्जी के कृतज्ञ रहेंगे।' यह डॉ. मुखर्जी के प्रयासों का ही फल था कि ये

अवशेष भोपाल के निकट सांची में प्राचीन विहार के निकट नव निर्मित विहार में लगाये गए।

1950 के फरवरी में पूर्वी पाकिस्तान की सरकार ने पाकिस्तान से हिन्दुओं का नामोनिशान मिटा देने के लिए एक हिन्दू विरोधी अभियान चलाया। तब तक हिन्दू पूर्वी पाकिस्तान के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक जगत का एक अहम हिस्सा थे तथा यहां बड़ी संख्या में प्रोफेसर, स्कूल शिक्षक, वकील, डॉक्टर तथा अन्य कुशल पेशेवरों के रूप में हिन्दू उपस्थित थे। इस अभियान के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में हिन्दुओं ने भारत में पलायन किया और वे पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा तथा असम में पूर्वी पाकिस्तान से निर्गमन कर गए। नेहरू के अनुसार इस समस्या का समाधान पाकिस्तान के तत्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली के साथ किसी संधि पर पहुंचकर ही किया जा सकता था और नेहरू ने इसके लिए कोशिश भी शुरू कर दी। किन्तु डॉ. मुखर्जी ने तर्क दिया, 'इस तरह की कोशिश पूरी तरह एक प्रकार की अज्ञानता है, क्योंकि इस विनाश की व्यूह रचना करने वाली सरकार तो लियाकत अली की ही है, जिसने इसकी शुरुआत की है। ऐसे में चोरी रोकने के लिए, चोरों के साथ किस तरह संधि की जा सकती है।' नेहरू ने उनकी एक नहीं सुनी, जिसका फल निकला कि डॉ. मुखर्जी के पास त्यागपत्र देने के अलावा कोई चारा नहीं बचा और उन्होंने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। सरदार पटेल सहित डॉ. मुखर्जी के साथ केन्द्रीय कैबिनेट में काम करने वाले कई लोग नहीं चाहते थे कि डॉ. मुखर्जी त्यागपत्र दें। उनके साथ बंगाल से आने वाले अन्य केन्द्रीय मंत्री के.सी.नियोगी ने भी त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र देने के बाद हावड़ा स्टेशन पर डॉ. मुखर्जी के पहुंचने से पहले ही बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। कहा जाता है कि वह एक अद्भुत और असाधारण दृश्य था।

इस बीच जवाहरलाल नेहरू ने जम्मू–कश्मीर में एक ऐसी नादानी कर दी, जो इतिहास में विख्यात है। ऐसा शायद उन्होंने लॉर्ड

माउंटबेटेन के प्रभाव में किया। जब महाराजा ने समय पर अधिग्रहण संधि पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया और टालमटोल करने लगे, तब पाकिस्तान ने राज्य पर कब्जा जमाने के लिए पठान आदिवासियों के वेश में वहां अपने सैनिक भेज दिये। उस समय चारों तरफ से जम्मू–कश्मीर को घेर लिया गया। सियालकोट से जम्मू की ओर रावलपिंडी से झेलम घाटी की ओर से श्रीनगर की ओर पाकिस्तानी सेना कूच कर गई। तब सरदार पटेल के प्रयासों से 26 अक्टूबर 1947 की संधि के अनुसार महाराजा हरिसिंह को संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने पर विवश होना पड़ा। इसके बाद भारतीय वायु सेना और थलसेना ने अद्भुत और अविश्वसनीय साहस और गति का परिचय देते हुए जम्मू तथा कश्मीर में पठानकोट से प्रवेश किया, पीर पंजाल की पहाड़ियों को पार किया, सेना श्रीनगर तक पहुंच गई और आक्रमणकारियों को घाटी के बाहर खदेड़ना शुरू कर किया। जब भारतीय सेना उन्हें पूरी तरह से खदेड़ने में सफल हो गई थी तब नेहरू ने अचानक युद्ध विराम की एकतरफा घोषणा करके स्वतंत्र भारत के इतिहास का सर्वाधिक भयंकर राजनैतिक कूटनीतिक व सामरिक अक्षम्य भूल करते हुए घोषणा की कि जम्मू कश्मीर में संयुक्त राष्ट्र की देखरेख में एक जनमत संग्रह कराया जायेगा। युद्ध के इतिहास में इस तरह की बेवकूफियां कम देखने को मिलती हैं। वर्तमान की कथित कश्मीर समस्या, नेहरू की इसी हठधर्मिता तथा नादानी का परिणाम है जो आज तक आतंकवाद के रूप में जारी है। राज्य के गिलगिट तथा स्कारदु की पट्टी के साथ मीरपुर तथा मुजफ्फराबाद वाला हिस्सा आज भी पाकिस्तान के हाथ में है। बाद में पाकिस्तान ने इसका एक हिस्सा (अक्साईचिन) चीन को सौंप दिया।

इसके बाद, शेख अब्दुल्ला जम्मू एवं कश्मीर राज्य के 'प्रधानमंत्री' (मुख्यमंत्री नहीं) के रूप में स्थापित किये गए तथा युवराज करण सिंह को सरदार–ए–रियासत (राजप्रमुख के रूप में नहीं, जबकि अन्य रियासतों में ऐसा ही किया गया था)। शेख

अब्दुल्ला ने राज्य इस तरह चलाना शुरू किया जैसे वे लगभग आजाद हों। सिर्फ यही नहीं, कश्मीर घाटी के लोगों के विरोधस्वरूप अब्दुल्ला ने जम्मू और कश्मीर के नागरिकों के प्रति पूर्णतः सौतेला व्यवहार करना शुरू कर दिया।

डॉ. मुखर्जी इस बीच बिना पार्टी के नेता थे। ऐसे में वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री गुरूजी गोलवलकर से मिले। उन्होंने डॉ. मुखर्जी को एक पार्टी बनाने के लिए कहा, जिसके लिए गुरूजी ने कुछ विश्वसनीय एवं योग्य कार्यकर्ता उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया। इन्हीं में पंडित दीनदयाल उपाध्याय, बलराज मधोक, अटल बिहारी वाजयेपी, कुशाभाऊ ठाकरे, नानाजी देशमुख, सुंदर सिंह भंडारी, जगदीश प्रसाद माथुर तथा बहुत सारे अन्य कार्यकर्ता थे। डॉ. मुखर्जी ने पूरे देश से आये इन नेताओं के साथ कई बैठकें कीं और फिर कई विचारों तथा अनेक नामों पर विमर्श करने के बाद अंत में 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना की गई। घोषणा 21 अक्टूबर 1951 को दिल्ली के राघोमल आर्य कन्या विद्यालय से की गई। दिल्ली के गुरुद्वारा शीशगंज के सामने एक विशाल जनसमूह के सामने अपने अध्यक्षीय संबोधन में डॉ. मुखर्जी ने कहा, 'हमारी पार्टी लोगों के संदेश तथा सभी वर्गों के लोगों की सदिच्छा के साथ लगातार कार्य करती रहेगी तथा उनकी पूर्ण कोशिश होगी कि आने वाले दिनों में अधिक खुशहाल तथा उन्नत स्वतंत्र भारत का पुनर्निर्माण हो। कांग्रेस में तानाशाही की अभिव्यक्ति का प्रमुख कारण है कि उसके सामने कोई सुगठित विपक्षी दल नहीं है, जो बहुमत वाले दल का अपने बल पर स्वस्थ विरोध कर सके...आज एक अखिल भारतीय राजनीतिक पार्टी के रूप में भारतीय जनसंघ उभरकर सामने आयी है, जो मुख्य विपक्षी दल के रूप में काम करेगी। हमारे दल का द्वार बिना किसी जाति, धर्म और समुदाय का ध्यान रखते हुए सबके लिए खुला हुआ है। हम अर्थपूर्ण परंपराओं, तौर–तरीकों, धर्म तथा भाषा को स्वीकार करते हैं जो कि भारत की अद्‌भुत विविधता को

प्रकट करता है, लोग सहचर्य के बंधन द्वारा अनिवार्य एकता में बंधे हुए हैं तथा यह सहचर्य तथा समझ एक साझी मातृभूमि के प्रति गहरी भक्ति और समर्पण से प्रेरित है...जबकि धर्म और जाति के आधार पर राजनीतिक अल्पसंख्यक विकास को प्रोत्साहित करना बहुत खतरनाक होगा। स्पष्ट रूप से भारत की जनसंख्या के विशाल बहुसंख्यकों के साथ सभी वर्गों का विश्वास दिलाना होगा, जो सही अर्थों में अपनी मातृभूमि के प्रति निष्ठावान हैं कि उन्हें कानून के अंतर्गत पूरी सुरक्षा पाने का अधिकार है तथा सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी मामलों में उन्हें बराबरी स्थापित करना है। हमारा दल बिना लाग लपेट के यह भरोसा देती है। हमारा दल इस बात में विश्वास करता है कि भारत का भविष्य, भारतीय संस्कृति और उसकी मर्यादा की उचित मूल्यांकन और सदुपयोग में है।'

पाकिस्तान को उद्धृत करते हुए डॉ. मुखर्जी ने 'एक कठोर पारस्परिकता की नीति' का आह्वान किया। कश्मीर की चर्चा करते हुए डॉ. मुखर्जी ने कहा, 'हमारी पार्टी महसूस करती है कि मामले को संयुक्त राष्ट्र से वापस लेना चाहिए तथा जनमतसंग्रह का कोई सवाल नहीं होना चाहिए। कश्मीर भारत का एक अविभाज्य भाग है तथा उसे अन्य किसी प्रांत की तरह ही देखा जाना चाहिए'। डॉ. मुखर्जी भी नेहरू के कड़े आलोचक थे, जो अब तक निरंतर डॉ. मुखर्जी के खिलाफ 'सांप्रदायिक' शब्द का उपयोग कर रहे थे। डॉ. मुखर्जी ने कहा, 'बार–बार मुस्लिम सांप्रदायिकता की वेदी पर भारतीय राष्ट्रवाद का बलिदान करने के बाद तथा विभाजन के पश्चात् भी पाकिस्तान सरकार की सनक और घोर विरोध के समक्ष नेहरू के आत्मसमर्पण के बाद यह पंडित नेहरू के झूठे मुंह को शोभा नहीं देता कि वे किसी और को 'सांप्रदायिक' कहें। आज मुस्लिम तुष्टीकरण के अलावा भारत में किसी तरह की कोई सांप्रदायिकता नहीं है, जिसे आने वाले आम चुनाव में वोट के जरिये जीत हासिल करने के उद्देश्य से नेहरू और उनकी मित्रमंडली द्वारा शुरू किया गया है। आज हमारे देश में

प्रांतवाद तथा अन्य तरह का जाति तथा जातिभेद है। आइये, हम संयुक्त प्रयास के द्वारा इस बुराई को दूर करें ताकि सही अर्थों में हम एक लोकतांत्रिक भारत की नींव रख सकें।'

डॉ. मुखर्जी ने अपना ऐतिहासिक संबोधन का समापन अपने उन शब्दों के साथ किया, जो आज भी प्रेरणा देते हैं, 'हम पूर्ण विश्वास, आशा और साहस के साथ अपना कार्य करेंगे। हमारे कार्यकर्ता इस बात को सदा याद रखें कि सिर्फ सेवा और बलिदान के माध्यम से ही जनसमूह के विश्वास को जीता जा सकता है। भारत पुनर्जीवन और पुनर्निर्माण के महान् कार्य के लिए हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। भारतमाता अपने बच्चों को किसी जाति, वर्ग या धर्म का ध्यान किये बिना अपने पास बुलाती है तथा सेवा का आह्वान करती है। हालांकि वर्तमान में अंधेरा हो सकता है, लेकिन आने वाले वर्षों में इसमें उजाला भरने के लिए भारत के पास एक महान् नियति है। हो सकता है आने वाले चुनाव में हमारी पार्टी का चुनाव चिह्न मिट्टी का विनम्र प्रदीप हो। कोशिश की जायेगी कि इस उम्मीद की रोशनी को हम आगे बढ़ायें तथा एकता, विश्वास तथा साहस के बल पर हम उस अंधेरे को दूर भगायें, जिसने आजकल हमारे देश को आच्छादित कर रखा है। सफर तो अभी शुरू ही हुआ है। किरणों का सफर अभी बाकी है..... विधाता हमें सही रास्ते पर हमेशा आगे बढ़ने के लिए हमें शक्ति और दृढ़ता दें। साथ देकर हमें भय या लोभ में गिरने से बचायें और भारत को महान् तथा सशक्त बनाने में हमारी सहायता करें ताकि वह धन और समृद्धि के संरक्षण में एक सही और महान साधन बन सके।' नेहरू जी को उनकी लोकप्रियता रास नहीं आ रही थी। उन्हें डॉ. मुकर्जी खुली चुनौती दे रहे थे। इसलिए संसद में झुंझला कर, बहस के दौरान नेहरू जी ने डॉ. मुकर्जी को कहा 'I will crush Jansangh. ('मैं जनसंघ को कुचल दूंगा') उस पर डॉ. मुकर्जी का बेबाक जवाब इतिहास में सिकन्दर व पुरू के संवाद के समान ही अद्वितीय व बेजोड़ है। उन्होंने कहा, 'मैं कहता हूं, मैं आपकी इस कुचल डालने

वाली मानसिकता को कुचलकर रख दूंगा' (I will crush this crushing mentality of yours).

1951—1952 में, पहला आम चुनाव हुआ, जिसमें जनसंघ को 3 सीटें मिलीं—दो पश्चिम बंगाल से और एक राजस्थान से। इस बीच कश्मीर समस्या लगातार बदतर होती गई। डॉ. मुखर्जी ने नेहरू को कई बार पत्र लिखा तथा उनके बीच त्रिपक्षीय पत्र व्यवहार हुआ, उनके, नेहरू और शेख अब्दुल्ला के बीच, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। डॉ. मुकर्जी ने नेहरूजी को स्पष्टतः परमिट की बात बताई और 'दो प्रधान, दो निशान' को दूर करने को कहा। इस बीच प्रजा परिषद् ने पंडित प्रेमनाथ डोगरा के नेतृत्व में शेख अब्दुल्ला द्वारा जम्मू को नजरअंदाज करने के खिलाफ आंदोलन छेड़ दिया। डॉ. मुखर्जी ने पंडित डोगरा के साथ मीटिंग की तथा उन्होंने खुद अपनी पार्टी को इस आंदोलन का साथी बताया। इसी बीच, डॉ. मुखर्जी एक ऐसे तेजस्वी सांसद के रूप में उभरे, जिनसे नेहरू भयभीत थे। वह पूरे विपक्ष के सबसे मुखर वक्ता बन गए थे और केवल विपक्ष ब्लॉक एकजुट करने वाले नेता ही नहीं, बल्कि विपक्ष के अनौपचारिक नेता के रूप में भी अपनी पहचान बनाने में सफल रहे।

भारतीय जनसंघ का प्रथम वार्षिक सत्र कानपुर में आयोजित हुआ। यह बैठक कई युवा नेताओं के उभार की साक्षी बनी। इनमें सबसे अग्रणी थे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक पं. दीनदयाल उपाध्याय। डॉ. मुखर्जी ने इन्हीं युवा नेताओं में से एक अटल बिहारी वाजपेयी को अपना निजी सचिव बनाया, जो बाद में भारत के प्रधानमंत्री बने।

इस समय जम्मू—कश्मीर में एक नई पद्धति चालू की गई जिसके अनुसार यदि कोई भारतीय जम्मू और कश्मीर राज्य में प्रवेश चाहता था, उसे केंद्रीय रक्षा मंत्रालय से एक परमिट लेना पड़ता था। इस विषय में प्रश्न किए जाने पर पं. नेहरू साफ मुकर गए कि जम्मू कश्मीर जाने के लिए परमिट की आवश्यकता है। इसके लिए पंडित

प्रेमनाथ डोगरा के आह्वान पर डॉ. मुखर्जी ने बिना किसी परमिट के जम्मू जाने का फैसला किया। वे व्यक्तिगत तौर पर भी वहां के हालात तथा शेख अब्दुल्ला की सरकार द्वारा प्रदर्शनकारियों पर दमन का जायजा लेना चाहते थे। उसी के अनुसार, 8 मई 1953 को उन्होंने नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से पैसेन्जर ट्रेन के माध्यम से अपनी यात्रा की शुरुआत की। इस यात्रा में उनके साथ कुछ प्रेस के लोगों के अतिरिक्त वैद्य गुरुदत्त, अटल बिहारी वाजपेयी, टेकचंद तथा बलराज मधोक थे। उन्होंने अंबाला, जालंधर तथा पठानकोट को अपना पड़ाव बनाया तथा इन स्थानों पर उन्होंने भारी संख्या में उपस्थित देशभक्तों को संबोधित किया। पूर्वी पंजाब तथा जम्मू और कश्मीर की सीमा के निकट पठानकोट पहुंचने से पहले, उसी ट्रेन में जिला के उपायुक्त भी गुरुदासपुर में सवार हुए और उपायुक्त को कहा गया कि अगर डॉ. मुखर्जी जम्मू–कश्मीर में बिना परमिट के प्रवेश करते हैं, तो वे उन्हें गिरफ्तार करें। किन्तु, माधोपुर की सीमा पर पहुंचते ही उन्हें आश्चर्यजनक रूप से एक शासनादेश मिला जिसमें उन्हें कहा गया कि अगर डॉ. मुखर्जी तथा उनके साथी जम्मू और कश्मीर में प्रवेश चाहते हैं, तो उन्हें बिना किसी परमिट के वहां जाने की अनुमति है।

जब डॉ. मुखर्जी और उनके साथी दोनों राज्यों को अलग करने वाली रावी नदी पर बने पुल के बीचोंबीच पहुंचे, तब उन्हें जम्मू और कश्मीर राज्य की पुलिस ने इस आधार पर गिरफ्तार कर लिया कि वे जन सुरक्षा और शांति के लिए खतरनाक हैं। यहां महत्त्वपूर्ण रूप से उल्लेखनीय है कि बिना परमिट के जम्मू और कश्मीर में प्रवेश करते हुए उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया, क्योंकि इस दिन तक इस तरह की परमिट केंद्रीय रक्षा मंत्रालय द्वारा जारी की जा सकती थी तथा बिना परमिट के जम्मू और कश्मीर में प्रवेश करते हुए एक व्यक्ति को सिर्फ भारतीय अधिकारियों द्वारा गिरफ्तार किया जा सकता था, न कि जम्मू और कश्मीर के अधिकारियों द्वारा। तब भी महत्त्वपूर्ण रूप से गुरुदासपुर जिले के उपायुक्त का स्पष्ट निर्देश था कि उन्हें गिरफ्तार

नहीं किया जाए तथा जम्मू और कश्मीर में प्रवेश करने दिया जाए। पीछे मुड़कर देखें तो यह मामला उतना सरल नहीं था, जितना दिख रहा था। यह बहुत ही जटिल मामला था। वास्तविकता यह थी कि उन्हें बड़ी चतुराई से बिना परमिट के जम्मू और कश्मीर में घुसने दिया गया। जो भारत के उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के बाहर उन्हें लाने के लिए किया गया। वह गुरदासपुर में गिरफ्तार कर लिये गये होते, तो बंदी प्रत्यक्षीकरण की एक याचिका से उन्हें पलक झपकते ही बाहर ले आया जाता।

गिरफ्तारी के तुरंत बाद डॉ. मुखर्जी जीप में डाल दिये गए तथा पूरी फुर्ती के साथ उन्हें बटोटे ले जाया गया। वहां उन्होंने रात व्यतीत की और फिर वहां से उन्हें अगली सुबह श्रीनगर ले जाया गया, जहां उन्हें एक छोटी सी एकांत और उजड़ी–पुजड़ी झोपड़ी में डाल दिया गया। मुखर्जी के अलावा उनके साथ वैद्य गुरुदत्त तथा टेकचंद भी थे।

इस झोपड़ी को एक उप–जेल में बदल दिया गया था, जिसमें डॉ. मुखर्जी को बहुत मुश्किलों के साथ बेहद तंग परिस्थितियों में समय व्यतीत करना पड़ा। उन्हें पहले से ही चिकित्सकीय परामर्श दिया गया था कि उन्हें लंबी दूरी तक टहलना है। मगर यहां उन्हें उसकी भी अनुमति नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप, उन्हें एक पैर में हो रहे भयंकर दर्द की परेशानियों से गुजरना पड़ा। इसी बीच नेहरू तथा उनके गृह एवं प्रदेश मंत्री डॉ. काटजू 24 मई 1953 को श्रीनगर के दौरे पर गए, लेकिन उन्होंने डॉ. मुखर्जी से मिलने की तकलीफ नहीं उठायी। 19–20 जून की रात, डॉ. मुखर्जी की छाती और पीठ में दर्द हुआ तथा ताप से बदन जलने लगा। अगले दिन 21 जून को उनके बदन का तापमान गिरना शुरू हो गया तथा वे पसीने से तर–बतर हो गये। लगभग 11 बजकर 30 मिनट पर एक टैक्सी जो एंबुलेंस नहीं थी, के साथ जेल निरीक्षक, उन्हें रखे जा रहे झोपड़ी के पास पहुंचा तथा उसने डॉ. मुखर्जी को टैक्सी में डाला। फिर वे वहां

से ले जाये गए। वहां आस–पास में न कोई नर्सिंग होम था और न ही कोई ढंग का हस्पताल केवल लगभग दस मील की दूरी पर एक राज्य हॉस्पीटल का महिला (गाइनेकॉलॉजिकल) वार्ड था। इसी बीच बैरिस्टर यू.एम. त्रिवेदी श्रीनगर आये ताकि डॉ. मुखर्जी की जमानत के लिए याचिका दायर की जा सके। वे 22 जून को डॉ. मुखर्जी से मिलने गए तथा सात से पंद्रह मिनट तक उनके साथ बैठे रहे और फिजिशियन से उनकी जांच करने को कहा। उन्होंने जानना चाहा कि उनके स्वास्थ्य की क्या स्थिति है, किन्तु फिजिशियन ने त्रिवेदी से कहा कि फिलहाल चिंता की कोई बात नहीं है। लेकिन 23 जून के लगभग तीन बजकर पैंतालीस मिनट सुबह में त्रिवेदी को एसपी ने जगाया और डॉ. मुखर्जी के बिस्तर को बगल में करने को कहा। उन्हें तथा पंडित प्रेमनाथ डोगरा तथा दो और गिरफ्तार हुए लोगों को भी जाने को कहा गया और वे सभी सुबह चार बजे हस्पताल पहुंचे जहां उन्हें सूचना दी गई कि डॉ. मुखर्जी ने सुबह 3 बजकर 40 मिनट पर अंतिम सांस ली।

यह पूरी तरह स्पष्ट है कि डॉ. मुखर्जी को अंतिम समय तक योजनापूर्वक अति संभव उपेक्षित स्थिति में एक ऐसी एकांत झोपड़ी में रखा गया, जहां न तो टेलीफोन कनेक्शन था और न ही उन्हें झोपड़ी से बाहर घूमने फिरने की इजाजत थी। सुविधा हीन गाइनेकोलॉजिकल वार्ड में रखे जाने के ऐसे तमाम उदाहरण हैं, जो बताते हैं कि उन्हें जानबूझकर नजरअंदाज किया गया। यह कश्मीर आकर भी उनसे नहीं मिलने वाले नेहरू में, शालीनता की कमी भी दर्शाता है। उस समय डॉ. मुखर्जी एक बेहद महत्त्वपूर्ण सांसद थे और वास्तविक रूप से विपक्ष के नेता के अतिरिक्त पूर्व केन्द्रीय मंत्री भी थे। इसके बावजूद उन्हें किसी वीआईपी वार्ड में नहीं रखा गया। उनकी जीवनी के लिए शोध करने के दौरान तथा दो प्रमुख डॉक्टरों से पूछताछ करने के बाद कोई यह सुबूत जुटा सकता है कि झोपड़ी में रहने के दौरान डॉ. मुखर्जी कम से कम एक हार्ट अटैक या संभवतः

दो हार्ट अटैक से गुजरे हों तथा शायद वो डीवीटी (डीप वेन थ्रॉम्बोसिस) जैसी परेशानियों से गुजर रहे थे। उनकी बड़ी बेटी (अब दिवंगत) श्रीमती सबिता बनर्जी से साक्षात्कार के मौके पर पता चला कि उनकी मृत्यु से तत्काल पहले उनके शरीर में ऐसा कुछ इंजेक्ट किया गया था कि जिससे उनका पूरा शरीर जल रहा था और वे चिल्ला रहे थे, 'हमको जल रहा है।' यह बात सबिता बनर्जी को उनकी सेवा में लगी नर्स मिस राजदुलारी टिक्कू ने बताया था, लेकिन इसे पुष्ट नहीं किया गया।

अगले दिन उनका पार्थिव शरीर कलकत्ता ले जाया गया, इस अवसर पर कियोरतला श्मशान घाट ले जाते हुए उनकी शवयात्रा में लोगों की अविश्वसनीय भीड़ उमड़ पड़ी। उनकी मृत्यु के बाद सबसे दुखद तथा शर्मिन्दगी से भरपूर सुनी सुनायी जाने वाला कहानी का पक्ष यह है कि डॉ. मुखर्जी की मां द्वारा अपने पुत्र की मृत्यु की जांच की मांग के अनुरोध को नेहरू ने ठुकरा दिया। जब किसी गणमान्य जननेता की मृत्यु होती है या संदिग्ध अवस्था में वे गायब कर दिये जाते हैं, तो सामान्यतः पूछताछ अधिनियम 1952 के प्रावधानों के तहत एक आयोग बनाकर उस घटना की जांच की जाती है। कम से कम तीन प्रकरणों में इस तरह की जांच की जा चुकी है, जैसे, नेताजी सुभाष चंद्र बोस के गायब होने के संबंध में शाह नवाज कमीशन (1956), जी.डे.खोसला कमीशन (1970) तथा मनोज मुखर्जी कमीशन (1999)। महात्मा गांधी की हत्या की जांच कपूर कमीशन ने की थी, इंदिरा गांधी की हत्या की जांच ठक्कर कमीशन और राजीव गांधी की हत्या की जांच दो–दो आयोगों–वर्मा आयोग तथा एमसी जैन आयोग ने की थी। इन सभी हत्याओं (नेताजी के गायब होने के अतिरिक्त) पर आम लोगों की दृष्टि थी और इसलिए किसी के दिमाग में कोई शक नहीं था कि व्यक्ति की मौत कैसे हुई। जांच की आवश्यकता तो सिर्फ इसलिए होती है कि उस हत्या की पृष्ठभूमि क्या थी तथा उसके पीछे कौन सा षड्यंत्र काम कर रहा था, को जाना जा सके। लेकिन दूसरी

ओर डॉ. मुखर्जी की असामयिक तथा संदिग्ध मृत्यु राज ही रही। उनकी मृत्यु उनके परिवार तथा ईष्ट–मित्रों से बहुत दूर, एक अनजान क्षेत्र में तथा यहां तक कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर हुई। इसलिए यह स्वाभाविक है कि डॉ. मुखर्जी के परिवार, सहयोगी, प्रशंसक, पार्टी के लोग तथा असंबद्ध लोग, जो सार्वजनिक मामले में रूचि रखते हैं, वे इसके लिए जांच की मांग जरूर करते।

इसकी पहल डॉ. मुखर्जी की मां जोगमाया देवी ने की, जिन्होंने 30 जून 1953 को दी गई नेहरू की श्रद्धांजलि संदेश के जवाब में उन्हें 4 जुलाई को संबोधित करते हुए एक दो टूक पत्र लिखा ''आपकी किसी भी शोक संवेदना की प्रतीक्षा मुझे नहीं है। मैं तो सिर्फ न्याय की मांग करती हूं। मेरा बेटा कैद में मरा–एक ऐसी कैद, जिसके लिए किसी भी तरह की न्यायिक प्रक्रिया नहीं थी। आपने अपनी चिट्ठी में प्रभावित करने की कोशिश करते हुए लिखा है कि कश्मीर सरकार ने वह सब किया, जो किया जाना चाहिए था। आप अपने आश्वासन के आधार पर अपना प्रभाव छोड़ना चाहते हैं तथा सूचनाएं वही हैं, जो आपने पायी हैं। मैं पूछती हूं कि इस तरह की सूचना का क्या मोल है, जब यह उस व्यक्ति द्वारा दी जाती है, जो स्वयं ही जांच पड़ताल के घेरे में है? आप कहते हैं कि आपने मेरे बेटे की कैद के दौरान कश्मीर का दौरा किया था। आप उसके प्रति अपने स्नेह की बात करते हैं, लेकिन मैं चकित हूं कि आपको वहां उससे व्यक्तिगत तौर पर मिलने से रोका किसने था तथा उसकी सेहत को लेकर संतुष्ट होने तथा उसकी व्यवस्था करने से आपको मना किसने किया था ?" जोगमाया देवी ने अपने प्रश्नों से नेहरूजी को सीधा घेर कर पूरे देश की जनता के मन की व्यथा तथा उठने वाले सवालों को आकार दिया था। वो प्रश्न 60 वर्षों बाद भी देश की जनता के सामने खड़े हैं।

जवाब में नेहरू ने डॉ. मुखर्जी की शोकसंतप्त मां से अपनी

चिकनी–चुपड़ी बातों से किसी तरह की जांच से इन्कार कर दिया। पांच जुलाई के दिनांकित उत्तर में बहुत कम कहा गया, मगर जो कुछ कहा गया, वह चकित करने वाला है, ''मैं एक मां के दुःख को अच्छी तरह समझ सकता हूं तथा प्यारे बेटे की मौत पर उनकी मानसिक पीड़ा को महसूस कर सकता हूं। मेरे पास ऐसा कोई शब्द नहीं, जो इस आघात को कम कर सके, जिस आघात को आप महसूस कर रही होंगी.....डॉ. मुखर्जी की कैद तथा मौत के मामले में काफी सावधानीपूर्वक पूछताछ किए बिना मैंने आपको लिखने का जोखिम पहले नहीं उठाया। मैंने हालांकि कई लोगों से इस बारे में आगे पूछताछ की है, जो मौके पर मौजूद थे और जिनके पास कुछ ठोस जानकारियां थीं। मैं इतना ही कह सकता हूं कि मैं स्पष्ट और ईमानदार निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि इसमें कोई राज नहीं है तथा यह कि डॉ. मुखर्जी का हर तरह से ध्यान रखा गया।''

सबसे महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय नेताओं में से एक की संदिग्ध मौत की जांच को लेकर एक गंभीर और वास्तविक मांग के लिए क्या कोई इससे भी ज्यादा अस्पष्ट और लापरवाह उत्तर की कल्पना कर सकता है? "मैंने यद्यपि बड़ी संख्या में लोगों से आगे पूछताछ की है, जो घटनास्थल पर उपस्थित थे और जिनके पास कुछ ठोस जानकारियां थीं"–कौन? संख्या? किस तरह का घटनास्थल और कौन सी ठोस जानकारियां? अज्ञात आवरणों के साथ, अज्ञात लोगों की, अनिर्दिष्ट संख्या पर यह बातचीत क्या केवल उनकी व्यक्तिगत संतुष्टि मात्र नहीं थी? क्या वे बच्चों के समान बातें नहीं कर रहे थे? लेकिन यह नेहरू थे। एक स्वेच्छाचारी शासक और अब पूरी तरह से तानाशाही रवैये वाले शासक। हमने पूछताछ की है, क्या लगता है कि आप हमसे सवाल करेंगे? 'मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूं कि मैं एक स्पष्ट और ईमानदार निष्कर्ष पर पहुंचा हूं'– दूसरे शब्दों में, अपने विवेक से मैंने कुछ और नहीं कहने का निर्णय ले लिया है। और मेरे स्पष्ट तथा ईमानदार निष्कर्ष के बाद हर तर्क समाप्त हो जाता है।

यह नेहरू थे। गांधी और पटेल दोनों की मृत्यु हो चुकी थी। और डॉ. मुखर्जी के निधन के साथ, वह आखिरी व्यक्ति जो नेहरू से सवाल कर सकता था, अब नहीं रहा। आखिरकार नेहरू स्वर्गीय अधिकारों वाले सम्राट थे तथा उनकी कृपा होने पर ही कोई कुछ कर सकता था। जांच की मांग करने वालों में जयप्रकाश नारायण, पुरुषोत्तम दास टंडन, हरि विष्णु कामथ, एम.आर.आवेकर, मास्टर तारा सिंह, सुचेता कृपलानी, पंडित हृदयनाथ कुंजरु, एस.एस.मोरे तथा अन्य अनेक थे। पश्चिम बंगाल के कांग्रेस अध्यक्ष अतुल्य घोष तथा डॉ.बी.सी रॉय ने भी घुमा फिराकर जांच की मांग की थी। जैसी कि आशंका व्यक्त की गई थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू टस से मस नहीं हुए।

इस तरह भारत माता के महान् सपूतों मे से एक के जीवन को 'क्रश' कर दिया गया। एक और देशभक्त राष्ट्र की बलिवेदी पर न्योछावर हो गया। लेकिन यह बलिदान व्यर्थ नहीं गया। जिस दल की डॉ. मुखर्जी ने स्थापना की, राष्ट्र निर्माण के जिन आदर्शों को उन्होंने देश तथा कार्यकर्ताओं के सामने प्रस्तुत किया, अंततः उनकी प्राप्ति हुई। 60 वर्ष जरूर लगे लेकिन आज हमारे पास पूर्ण बहुमत वाली भाजपा रूपी जनसंघ के दीपक का प्रकाश भारत को प्रकाशित कर रहा है। सत्तारूढ़ भाजपा सरकार उन महान आदर्शों से प्रेरित और ओत–प्रोत है तथा भारत की मर्यादा की रक्षा करने तथा एक महान् तथा संगठित भारत के सपने को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध है, जो डॉ. मुखर्जी ने देश के लिए देखा था।

डॉ. मुखर्जी को अपनी श्रद्धांजलि में श्री गुरुजी गोलवलकर ने कहा था– "अपनी मातृभूमि के लिए एक सच्चे योद्धा के रूप में डॉ. मुखर्जी कश्मीर के एकीकरण के लिए, युद्ध के सामने वाले मोर्चे पर बलिदान हुए और जो कश्मीर भारत का अभिन्न हिस्सा है और उसे होना चाहिए, उसे तत्काल ही भारत के अविभाज्य तथा अभिन्न हिस्से के रूप में घोषित किया गया।'' डॉ. मुखर्जी को अटल बिहारी वाजपेयी ने मर्मांतक श्रद्धांजलि देते हुए कहा, "भारतीय जनसंघ के

अध्यक्ष बनने के बाद मुझे डॉ. मुखर्जी के साथ काम करने का सौभाग्य मिला। मैं उनके श्रीनगर दौरे पर उनके साथ था, जहां से वे फिर कभी नहीं लौटे। लोगों के लिए उनका आखिरी संदेश था–'मैंने जम्मू और कश्मीर में परमिट प्रणाली को चुनौती देते हुए प्रवेश कर लिया है', ये शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं। वे पहले व्यक्ति थे, जो भारत की एकता तथा एकीकरण के लिए शहीद हुए। उनका कद्दावर व्यक्तित्व, उनकी तर्क क्षमता, उनकी राजनीतिक दृढ़ता तथा सबसे बढ़कर उनका मानवतावाद आने वाली पीढ़ियों को हमेशा प्रेरित और मार्गदर्शन करते रहें।"

◆◆◆